(78)

शीराज़ा हिन्दी

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी
जम्मू - कश्मीर . जम्मू



सितम्बर १९७३

शीराज़ा

हिन्दी

सम्पादक :
रमेश मेहता

ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर, जम्मू ।

वार्षिक शुल्क : ८ रुपये　　एक प्रति : २ रुपये

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार

रमेश मेहता

सम्पादक

शीराज़ा हिन्दी

ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर,

नहर मार्ग, जम्मू

फोन : ५०४०

सचिव द्वारा जम्मू व कश्मीर ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर के लिए प्रकाशित तथा एस. एन. मगोत्रा प्रिंटिंग प्रैस, जम्मू में मुद्रित ।

वर्ष : ९; अंक : २　　सितम्बर १९७३

शीराज़ा हिन्दी

वर्ष : ९] सितम्बर १९७३ [अंक : २

अनुक्रमणिका

लेख

कथा-साहित्य

काव्य-धारा

स्थायी स्तम्भ

हस्ताक्षर - नए . . . नए . . .

लोक-मंच



अश्लीलता का दौर—
कथा साहित्य किस ओर ?

यह सत्य है कि प्रणय-क्षण जीवन के मधुरतम क्षणों में से होते हैं अत: साहित्य में युगों-युगों से प्रणयी-युगलों का विभिन्न परिस्थितियों में चित्रण किया जाता रहा है। परन्तु यह भी सत्य है कि प्रणय के नाम पर जितना नग्न एवं अश्लील चित्रण यौन-सम्बन्धों को लेकर नयी पीढ़ी के कथाकार कर रहे हैं उतना हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने भी नहीं किया था। इस सन्दर्भ में यह तर्क दिया जा सकता है कि आज के युग जैसी यांत्रिकता, विलास-प्रियता एवं कुण्ठित मन:स्थिति भी तो पहले कभी किसी की न थी। आज का व्यक्ति जिस प्रकार की घुटन, जलन और संत्रास को वहन करता हुआ अभावों और महत्वाकांक्षाओं के झूलों पर सवार कभी इस छोर और कभी उस छोर को छूते हुए जिन्दगी को ढो रहा है. वैसी जिन्दगी सम्भवत: प्राचीन भारत में कभी किसी को नहीं ढोनी पड़ी है। परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन की विसंगतियों को महसूसते हुए आज का कथाकार अनुभूतियों की जिस तीव्रता को भोगे हुए यथार्थ के नाम पर साहित्य में प्रस्तुत करता है वह कहीं - न - कहीं छिछली अवश्य रह जाती हैं। मेरे विचार में ऐसा इस लिए होता है कि आज का कथाकार सामयिक समाज का यथातथ्य चित्रण अपरिमार्जित रूप में प्रस्तुत करने लग जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में जो बुराइयां ढके-छुपे की जाती हैं—तथा व्यापक परिवेश में जिनकी चर्चा प्राय: साल में एक-दो बार ही की जाती है, वही बुराइयां इन कथाकारो की लेखनी का सम्बल पाकर शाश्वतता को प्राप्त करती हुईं, समाज में रहने वाले प्रत्येक पाठक तक नि:सकोच पहुँच जाती हैं। माना कि समाज में होने वाले अनाचार से समाचार-पत्रों के पृष्ठ रंगे रहते हैं, परन्तु यह भी मानना होगा कि साहित्य का प्रभाव समाचार पत्रों से अधिक स्थायी एवं गहन होता है। इस तथ्य को बहुत पहले पाश्चात्य मनीषी रस्किन ने भी

यह कर स्वीकृति प्रदान की है कि समाचार पत्रों से स्थायी साहित्य का महत्व कहीं अधिक होता है। अतः साहित्य में इस अनाचार का चित्रण करते समय शालीनता एवं सीमा का ध्यान रखा जाए, यह परमावश्यक है।

आज के कथा-साहित्य में महेन्द्र भल्ला (एक पति के नोट्स) को अपनी पत्नी से ऊब हो चली है इसीलिए सुबह उठते ही पत्नी के सुन्दर मुख पर पड़ रही रवि-रश्मियों की चमक से द्विगुणित हुये उसके सौंदर्य को देख कर वह सोचते हैं कि पत्नी के स्थान पर यदि इस समय कोई पराई स्त्री यहां सोई होती तो निश्चय ही उसका मुख चूम लेते। और अंत में वह अपनी पड़ोसिन से सहवास करके अपनी इस प्रवृत्ति एव इच्छा के पूर्ण होने का प्रमाण भी दे देते हैं। डा० लक्ष्मीनारायण लाल भी कुछ ऐसे ही भाव रखते हैं, तभी तो "प्रेम : अपवित्र नदी" में उनके पात्र ऐसी बात-चीत कर पाते हैं – "स्त्री कह रही थी अगर वह मेरा पति न होता तो मैं उसे हर सुबह-शाम आलिंगन में बांध लेती। और पुरुष कह रहा था —अगर वह मेरी पत्नी न होती तो मैं उसे जब पाता पूरी ताकत से चूम लेता।" क्या सत्य ही सामाजिक सम्बन्धों में इतनी गिरावट आ गई है? क्या यह वार्तालाप प्रत्येक पति-पत्नी पर फिट बैठाया जा सकता है। मेरे विचार में—नहीं। रमेश बक्षी भी किसी से कम नहीं हैं, इसका प्रमाण 'किस्से-ऊपर-किस्सा' तथा 'देवयानी का कहना है' कि अध्ययन से मिल सकता है। देवयानी का कहना सम्भवतः यह है कि प्रत्येक लड़की अपने पिता की उपस्थिति में, अपने पिता को अपने प्रेम-विवाह का प्रमाण देने के लिए अपने प्रेमी से कहे कि—मैं नाइटी के बटन खोलती हूँ, तुम पिता जी को यह प्रमाण दे दो कि हम दोनों विवाहित हैं। मेरे विचार में भारतीय समाज अभी गिरावट के इस धरातल को नहीं छू पाया है।

राही मासूम रजा (आधा गांव, ओस की बूंद) नंगी गाली दिए बिना अपने परिवेश का सत्य एवं सशक्त चित्रांकन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। उषा प्रियम्वदा एक नारी का एक ही समय में अनेक पुरुषों से सम्बन्ध दिखा कर न जाने क्या सिद्ध करना चाहती हैं। अश्लीलता या श्लीलता का वह कौन सा ऐसा रूप है जिसे वह "कितना बड़ा झूठ" कह कर नकार देना चाहती हैं। निर्मल वर्मा की कोई भी कृति तब तक अधूरी है जब तक उसमें बियर और चुम्बन का जी भर कर चित्रण न कर लिया जाए। उनके लिए यह साधारण बात है कि उनकी उपस्थिति में उनका कोई मित्र अपनी किसी मित्र से सहवास करे और वह कल्पना में "ब्लू फिल्म' के दर्शक की भांति उस दृश्य का आनंद ग्रहण करते हुए प्रत्यक्ष में कुण्ठित एवं क्षुब्ध होने की बात करते रहें। ममता कालिया नारी हैं पर लिखते समय पुरुषों को भी मात देती हैं। उनमें अन्विता अग्रवाल एवं सुधा अरोड़ा जैसा संयमित प्रणय का चित्रांकन उपलब्ध नहीं होता। सम्भोग के चित्रण में वह ऐसे बिम्बों का संयोजन करती हैं कि संयमित पाठक भी उत्तेजित हुए बिना नहीं रह सकता।

रतिनाथ की चाची' में नागार्जुन ने समलिंगी-रति का चित्रण किया था तो इस पर खूब हो-हल्ला किया गया था, उन्हें भला-बुरा बहुत कुछ सुनना-सहना पड़ा था परन्तु मणि मधुकर जब 'सफेद मेमने' में मण्टो और नागार्जुन से भी आगे बढ़ जाते हैं तो उन्हें कोई कुछ भी कहने को प्रस्तुत नहीं है क्योंकि इस हमाम में सब नगे हैं। 'खोल दो' में मण्टो की पात्री का मुर्दा शरीर केवल सलवार ढलका कर ही रह गया था परन्तु मणि मधुकर की पात्री सुरजा का चित्र देखिये :—"सुरजा तुरन्त दरी पर लेट गई। उसने लहंगा ऊपर उठा लिया और मुंह फेर कर बोली —चढ़ जाओ।" यही नहीं जानवरों का डाक्टर सचमुच स्वयं भी जानवर बन जाता है और अपनी उत्तेजना पर काबू पाने में असमर्थ भैंस के साथ सम्भोग करता है। माना कि ऐसी घटनाएं होती होंगी परन्तु क्या ऐसी घटनाओं का साहित्यिक कृतियों में चित्रण अपेक्षित है ? क्या इनके बिना कृतिकार का कृतित्व पूरा नहीं हो सकता ? मेरे विचार में हो सकता है, क्योंकि आज तक ऐसा ही होता आया है। समाज में "आब्सैसड केसिज़" होते हैं परन्तु उन्हें साहित्य में स्थान दिया जाए यह उचित नहीं है। फिर भी यदि उन्हें स्थान देना अत्यावश्यक हो भी तो उसे संयमित भाषा का जामा पहना कर ही चित्रित किया जाना चाहिए।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' पर यह आरोप लगाया गया था कि उन्हें गांव-घर का, अपने पात्रों का केवल 'मैला आंचल' ही दीखता है परन्तु मुझे लगता है कि आज के सारे कथाकार रेणु से भी कहीं अधिक तीखी दृष्टि से लोगों के 'मैले आंचलों' की छान-बीन कर रहे हैं, 'की-होलों' से झांक कर ससुर और उसकी बहू के सम्बन्धों को ढूंढ रहे हैं (छाया मत छूना मन—हिमांशु जोशी) और फिर जो मिलता है, उस कचरे को अपनी विवेचना शक्ति की उपलब्धि स्वीकारते हैं। रामकुमार 'भ्रमर' एक सिद्धहस्त एव सशक्त लेखक हैं परन्तु उनकी कृतियों (कच्ची-पक्की दीवारें) में वासनापूर्ण कृत्यों का जैसा चित्रण मिलता है वैसा सम्भवत: वात्स्यायन के कामसूत्र में भी नहीं होगा।

फिलम - निर्माताओं की दृष्टि में आज जैसे कोई भी फिलम कैबरे, बाथरूम या बैडरूम सीन के बिना अधूरी है उसी प्रकार आज के कथाकारों के लिए कोई भी कृति तब तक परिष्कृत नहीं जब तक उसमें कुछ ऐसे दृश्य न जोड़ दिए जाएं जिन्हें नैतिक-कसौटी पर कसने से अश्लील ही माना जाएगा। परिणामस्वरूप जिस प्रकार आज की हिन्दी फिलम को आप अपने परिवार सहित देखने जाने में एक झिझक का अनुभव करते हैं उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य का अपने घर में प्रवेश आपको अखरने लगता है। अत: स्पष्ट है कि इस प्रकार का साहित्य एक नये सकट को जन्म दे रहा है। जिस प्रकार प्रेमचन्द-पूर्व कथा-साहित्य का किसी भी शरीफ आदमी के घर में प्रवेश निषिद्ध था, लगता है उसी प्रकार एक बार फिर कथा साहित्य का सम्भ्रांत परिवारों में प्रवेश बन्द हो जायेगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि साहित्यकार

अपना दायित्व पहचानें और सद्-साहित्य की रचना करें। सद्-साहित्य से मेरा आशय गांधी जी के बताए हुए एकादश-सूत्रों के आधार पर की गई साहित्य-रचना से नहीं है अपितु ऐसे साहित्य से है जो नैतिकता की सीमाओं को छूता हुआ गुज़रे और अश्लीलता के प्रथम चरण तक जाकर रुक जाए। तभी आज का कथा-साहित्य 'साहित्य' की गरिमा से मंडित हो सकेगा। अपने परिवेश का यथार्थ अंकन साहित्यकार का कर्त्तव्य है परन्तु कर्त्तव्य भी एक सीमा के भीतर ही निभाया जाना चाहिए। कर्त्तव्य का 'अन्ध-पालन' न तो समाज के हित में होगा न देश के और न स्वयं साहित्य के ही। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का यह कथन इस संदर्भ में विचारणीय हो सकता है—"इन्सान को सच की तलाश बहुत दूर तक नहीं करनी चाहिए, वरना उसे लगेगा—यह सारा जीवन अर्थहीन है। कभी-कभी वह तलाशी हुई सच्चाई खतरनाक भी हो सकती है।" अतः यौन सम्बन्धों की चर्चा साहित्य का एक अनिवार्य अंग हो सकती है परन्तु इन सम्बन्धों का चित्रण एक सीमा के भीतर ही हो, यही श्लाघनीय है।

—रमेश मेहता

राष्ट्रीय एकीकरण में लेखकों का दायित्व

★ सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन

(यह लेख मान्य लेखक द्वारा १९६२ के आम चुनावों के बाद लिखा गया था। यद्यपि लेख को लिखे दस वर्ष से ऊपर हो गये हैं परन्तु वर्तमान संदर्भ में भी उसका उतना ही महत्व है जितना उस समय था। चिन्तनशील लेखक वर्ग के लिये यह लेख परम महत्व का है इसलिये उसका हिन्दी अनुवाद पाठकों के लिये प्रकाशित किया जा रहा है। हम भारतीय विद्याभवन जर्नल के सम्पादक के आभारी हैं जिन्होंने अनुवाद करके छापने की अनुमति प्रदान की है। यह लेख जर्नल वर्ष ८, अंक २, मई १३, १९६२, पृष्ठ २१-२७ से साभार उद्धृत किया गया है।)

वर्तमान में कुछ स्थानों पर विधान सभाओं के चुनाव हुए हैं। इन चुनावों के परिणामस्वरूप पता चलता है कि सम्प्रदायवाद, जातिवाद और भाषावाद का हमारी जनता पर बड़ा प्रभाव है। हमारे देश को बाह्य आक्रमण का खतरा नहीं है। असली खतरा देश के भीतर की स्थिति का है। हमारे शत्रु कहीं देश से दूर नहीं बैठे हैं। वे हम लोगों के बीच रहते हैं। वे इस देश के ही रहने वाले हैं। ये ऐसी स्थितियां हैं जिनसे हमें निपटना है, युद्ध करना है। यदि हमारे देश ने वर्तमान समय का सभ्य और प्रगतिशील देश बनना है तो उसे इन परिस्थितियों से युद्ध करना होगा।

जहां तक भाषायी वाद-विवादों का सम्बन्ध है साहित्य अकादमी इस क्षेत्र में अपनी पूर्ण शक्ति से उत्तम काम कर रही है। यह लेखक-वर्ग को एक प्लैटफार्म पर एकत्रित कर रही है और अनुवादों के माध्यम से भिन्न-भिन्न लोगों को एक दूसरे के समीप ला रही है। औद्योगिक विकास ने भी इस संघटन कार्य को बढ़ावा दिया है।

हमारे प्रधान नगरों में से कितने ही बहुभाषी हैं। मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली आदि ऐसे ही महानगर हैं। इन नगरों में लोग भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हुए मिलते हैं। विश्वविद्यालय और वैज्ञानिक प्रयोगशालायें भी भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लोगों को एक दूसरे के सम्पर्क और सानिध्य में ला रही हैं, परन्तु देश की विशालता की तुलना में ये काम बड़े छोटे पैमाने के हैं।

जनता को संगठन के सूत्र में पिरोने के लिये, उन्हें यह महसूस कराने के लिये कि वे एक विराट पुरुष के अंग हैं एक महान उद्देश्य अपने सामने होना चाहिये। भाषावाद की कठिनाइयों पर धीरे धीरे काबू पाया जा रहा है। परन्तु सम्प्रदायवाद, धार्मिक दलबन्दी और धर्म विषयक उग्र भावनाए कुछ अधिक कठिनाइयां सामने ला रही हैं। हमने अपने राज्य को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया हुआ है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारा कोई धर्म ही नहीं है। या यह कि हम धर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। इसका केवल मात्र इतना ही अर्थ है कि हम किसी विशेष धर्म से अपने आप को सम्बन्धित नहीं करते। हम सब धर्मों को एक समान मान देते हैं और सबको अपने सिद्धातों के प्रचार प्रसार की खुली छुट्टी देते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह किसी भी धर्म का हो अपने धर्म को मानने उस पर चलने और अपनी मान्यताओं के अनुसार उनका प्रचार करने की छुट्टी है। परन्तु यह प्रचार प्रसार शिष्टाचार और मर्यादा की सीमाओं के अन्दर-अन्दर ही रहना चाहिये। हमारे देश की यही परम्परा रही है। धर्म-निरपेक्षता की भावना स्वतन्त्रताप्राप्ति के बाद की अपनाई हुई भावना नहीं है, यह हमारे देश की चलती आ रही परम्परा है।

हमारे देश में धर्म का अर्थ मन की स्थिति, यथार्थ से सम्बन्ध और जीवन की पद्धति रहा है। यहां किसी भी व्यक्ति को धार्मिक कहा जाता है इसलिए नहीं कि वह आध्यात्मिक बातें करता है या धर्म के विशेष आचरणों पर चलता है या मन्दिर और गिरजा घर में जाता है। वह तभी सच्चा धार्मिक कहा जाता है यदि उसने अपना पुनर्निर्माण किया है। यदि उसकी प्रकृति में विशेष परिवर्तन आया है। यदि

वह कह सकता है कि उसने अपने भीतर वास्तविकता का अनुभव किया है।

हमने 'अहं ब्रह्मास्मि', मैं ब्रह्म हूँ कथन से प्रारम्भ किया। भगवान बुद्ध कहते हैं कि बोध या जागरण का तत्व प्रत्येक प्राणी में होता है। महात्मा यसु मसीह ने कहा है--मैं और परमपिता एक हैं। मैं ही सत्य हूँ, मैं ही साधन हूँ और मैं ही जीवन हूँ। इस्लाम धर्म में कई लोगों को शहीद होना पड़ा क्योंकि उन्होंने भी इसी प्रकार ही कहा। मैं ही सत्य हूँ। हजरत पैगम्बर साहब ने कहा है कि यदि तुम अपने आप को पहचान लेते हो तो तुम ईश्वर को भी जानते हो।

इस लिये हम जानते हैं कि धर्म का अर्थ है मानसिक प्रबुद्धता की अवस्था। अज्ञान को हटा कर उसके स्थान पर बुद्धि को प्रतिष्ठापित करना। 'बोध' की स्थिति में पहुँच जाना। और यह भाव सब धर्मों में एक समान है। सांझा है। जब हम ब्रह्म से सम्पर्क की बात करने लगते हैं : वास्तविकता से नाता जोड़ने लगते हैं उस समय हमारा दृष्टिकोण बड़ा विशाल होता है। यह मानी हुई बात है कि अनुभव की पूर्णता तर्क या भाषा की पूर्णता में साकार नहीं की जा सकती भाषा की कोई भी अभिव्यक्ति या तर्क शास्त्र की कोई भी समस्या इन सब तथ्यों को एक साथ एकत्रित नहीं कर सकती।

फिर हम यह भी देखते हैं कि ब्रह्म से सम्बन्ध की अभिव्यक्ति बहुत से ढंगों से सम्भव है। धर्म भी तो एक जीवन पद्धति है। और हम धर्म को कितनी मान्यता प्रदान करते हैं। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति मानव मानव में भेद नहीं करेगा। निर्दोष हि समं ब्रह्म। क्योंकि ब्रह्म निर्दोष है, सम है, बराबर है अतः वह मानव मानव में किसी प्रकार का भेद उत्पन्न करने की चेष्टा नहीं करता। जब तक हम में दूसरे को नीचे गिराने की और उन्हे पंगु बना देने की भावना रहती है तो हम चाहे अपनी धार्मिकता का अपने ईश्वर विश्वास का कितना ही ढिण्ढोरा पीटते रहें हम वास्तव में नास्तिक ही रहते हैं। हम अपनी कथनी में धार्मिक बनते हैं परन्तु करनी में पूरे नहीं उतरते।

इस लिये आवश्यकता है कि धर्म की उसके विशाल अर्थों में व्याख्या की जाये। ऐसी व्याख्या जो हमारी परम्परा के अनुकूल हो। इसी परम्परा के अनुसार हमने यहूदियों, इसाइयों, और पारसिओं को भारत में आने दिया, बसने दिया और अपने-अपने धर्मों के अनुसार जीवन-यापन करते हूए उनके भारत को अपनी मातृ-भूमि समझने पर प्रसन्नता प्रकट की। हमने कभी अपने विश्वास, सिद्धान्त और जीवन पद्धति उन लोगों पर नहीं थोपे जो भारत में आकर बस गये। यदि उस आदर्श

में कहीं-कहीं त्रुटि रह भी गई है तो वह इस मूलभूत सिद्धांन्त की यथार्थता को सिद्ध करती है कि हमें प्रत्येक के सिद्धान्त, विश्वास और आग्रह के प्रति सहिष्णु होना चाहिये।

धार्मिक अल्प संख्यकों के प्रति असहिष्णुता, घृणा, और उन पर किसी प्रकार का अत्याचार हमारी सच्ची परम्परा के अनुकूल नहीं है। ऐसा नहीं कि हमने कभी ऐसी बात की ही नहीं होगी परन्तु हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि जब हम ऐसा करते हैं तो अपने व्रत से तथा आदर्श से गिर जाते हैं।

एक और बात ने यहां घर कर लिया है और वह है जातिवाद या जाति-प्रथा। प्राचीन समय में जातिवाद के अस्तित्व को न्यायसंगत ठहराने के लिये कोई भी कारण हो सकते हैं परन्तु आज इस प्रथा को न्याय संगत ठहराने का कोई कारण नहीं हो सकता। जब भिन्न-भिन्न कबीलों और बिरादरियों के लोग बहु संख्या में इकट्ठे हो गये होंगे तो हमने एक व्यवस्था बनाई। इस व्यवस्था के अनुसार उन लोगों को समाप्त नहीं किया, न ही उन्हें दास बनाया अपितु अपने राष्ट्र में एक प्रकार का स्थान दे दिया। जाति व्यवस्था का यह कारण हो सकता है। वर्तमान सदर्भ में जाति प्रथा को कतई न्याय सगत नहीं ठहराया जा सकता।

सब सम्प्रदायों के बहुत से व्यक्तियों ने और सब धर्मों के व्यक्तियों ने चिरकाल से इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई है। हम देखते हैं कि ईश्वरवादी गुरूनानक और सन्त कबीर तथा रामानुज और रामानन्द इत्यादि सन्त जो परब्रह्म की एकता या अभिन्नता से प्रभावित हैं, बार-बार कहते हैं कि हम जाति प्रथा के विषय में जो कुछ कर रहे हैं वह ठीक नहीं है। असख्य बार उन्होंने हमें बतलाया है कि हम सब जन्म से शूद्र होते हैं। अपने कर्म और कर्तृत्व से द्विजाति बनते हैं।

प्रारम्भ में शब्द 'एक वर्ण' का अर्थ एक जाति था। "कर्म क्रिया विभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्"। कर्म और क्रिया के भेद से जातियों की भिन्नता हुई। इसलिये हमें प्रारम्भिक स्थिति को ही अपनाना चाहिये कि हम जन्म से सब शूद्र हैं। हमें अपने कर्तृत्व और प्रयत्न से द्विजाति बनना है।

'पतित' शब्द का पहला प्रमाण या प्रसंग हमें छान्दोग्य उपनिषद में मिलता है। पतित वे होते हैं जो हत्या करने, चोरी करने, व्यभिचार करने और शराब पीने के दोष करते हैं। छान्दोग्य उपनिषद में 'पतित' शब्द प्रयुक्त हुआ है। मानव में भेद करने के मात्र आधार नैतिक मानदण्ड होते हैं। हमें उसी मूल-भूत आधार नैतिक मानदण्ड को ही अपनाना होगा और केवल वही एक-मात्र साधन है जिससे जातिवाद का सुधार हो सकता है।

बदकिस्मती यह है कि जाति प्रथा इस समय सामाजिक बुराई नहीं रही है।

यह एक राजनैतिक बुराई बन गई है। एक शासकीय बुराई की शक्ल इख्त्यार कर गई है। हम वोट हासिल करना चाहते हैं इसलिये हम ऐसे प्रत्याशी खड़े करते हैं जो उन लोगों के मुआफिक होते हैं जिन्होंने मतदान करना होता है। यदि चुनाव क्षेत्र में नादार जाति के लोगों की बहु संख्या है तो हम नादार जाति का प्रत्याशी खड़ा कर देते हैं। यदि चुनाव क्षेत्र में हरिजनों की बहुलता होती है तो हम हरिजन उम्मीदवार खड़ा करते हैं। इसी प्रकार कम्मा बहुसंख्य चुनाव क्षेत्र में हम कम्मा जाति का उम्मीदवार खड़ा करते हैं। हम इसी प्रकार करते चले आ रहे हैं। इस लिये यह परमावश्यक है कि हम राजनीति को इस दलदल से ऊपर उठाने की चेष्टा करें।

जैसा मैंने प्रारम्भ में ही कहा कि हमारी कठिनाइयां आन्तरिक हैं, मानसिक हैं। हमारे छिन्न-विच्छिन्न होने और कलह के कारण हमारे मन के भीतर छिपे हैं। जब तक हम अपने स्वभाव को नहीं बदलते, अपनी प्रकृति और अन्य बातों को नहीं बदलते ये लड़ाई-झगड़े और वैर-विरोध की बातें हटाई नहीं जा सकतीं। मैं स्पष्टतया कहता हूँ कि मानव स्वभाव जड़ नहीं है। इसमें विस्तृत होने की अनन्त शक्ति है। हमने पाषाण युग से आधुनिक युग तक उन्नति की है। हम परिवर्तन करते आये हैं और कितने ही परिवर्तन हमने किये हैं। जब हम परिवर्तित होना बन्द करेंगे हम मर जायेंगे। जिस समय परिवर्तन की क्रिया बन्द होती है, हम मर जाते हैं। इसलिये हमें वर्तमान के दबावों का, बदलती परिस्थितियों का ध्यान रखना चाहिये और अपने आपको वर्तमान स्थितियों के अनुसार ढालने की चेष्टा करनी चाहिये।

लेखक वर्ग अपनी रचनाओं के द्वारा पाठकों को यथार्थ परिप्रेक्ष्य प्रदान कर सकता है। लेखक अपने और अपने पाठकों के बीच एक तारतम्य स्थापित कर सकते हैं। और यदि लेखकों के विचार महान होंगे, सत्यपूर्ण होंगे, यथार्थमय होंगे तो जनता में भी स्वयं ही जागृति का विस्तार होगा। जब इस प्रकार की विशेष समस्या का सामना है तो लेखकों का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है। इसलिये मैं आशा करता हूँ कि लेखक सत्यपूर्ण विचार, प्रौढ़ चिन्तन तथा यथार्थ अनुभव का विस्तार करेंगे। लेखक यदि अपना यह कर्तव्य दयानतदारी से निभाते हैं तो समझना चाहिये कि वे राष्ट्र और नये ससार के निर्माण में अपना कर्तव्य पूर्णरूप से निभा रहे हैं।

अनुवाद : श्यामलाल शर्मा



एक शीर्षक विहीन स्थिति

शशिशेखर तोषखानी

ममय के गड्ढों में पड़ी-पड़ी
सड़ती हुई चुप्पियां गंधाती हैं
कैसे कहूँ, कैसे कहूँ, कैसे कहूँ, अपनी यातना
टूटे हुए जूतों में
हर विद्रोही मुद्रा
विवश लौट आती है।
सड़कें मेरी जेबों से बाहर निकल नहीं पाती हैं
(और अगर निकलतीं भी तो कहां जातीं ?)
यहां कुछ नहीं होता
यानी अघटना की सुरक्षित मिट्टी में
हर दृष्टि कीड़े-सी कुलबुलाती हुई सुखी है ।
हर सुबह कूड़ागाड़ी में लादकर ले जाती है
फटे हुए चेहरे और जंग खाई हुई बातों के टुकड़े
और फेंक जाती है उस सीमा पर
जहां मेरी आत्मा शुरू होती है
और लोग खुश हैं

क्योंकि उन्हें अपने कल के चेहरे
आज याद नहीं रखने !
और घूरे के इस निरन्तर बढ़ते जा रहे ढेर से
मुनाफा कमाने की बेहद गुंजाइश है
(नगर पालिका को ठेकेदारों ने
दे दिये हैं अपने-अपने आवेदन)
कत्ल हो जाने से पहले
शब्दकोश में साहस के बचे-खुचे पर्याय
बीमे के कागज़ों पर
दस्तखत करना नहीं भूलते
उफ ! कैसी है यह भाषा
जो मूर्खों, कायरों और चापलूसों को
किस्तों में मेरी पीड़ा बेच रही है
कसाई की कंटिया पर टंगे हुए अपने जिस्म से बाहर आ
मैं हर उस मेज़ पर धमाके सा छूटना चाहता हूं ।
जहां थूक चाटने के अर्थशास्त्र को
सूअर की खाल ओढ़ा कर बैठा दिया गया है
जो देश के नक्शे को विदेशी सिगार के धुंए में बदलकर
रोमांचित नथुने लिए
अपनी स्टेनो को मेरे बच्चे का भविष्य
टाइप करने का आदेश देता है !
बांझ नहीं बेहद उर्वरा है यह स्थिति
जो अपने पेट से
निरन्तर हज़ारों केंचुए जनती जा रही है—
त्वचा से अनुकूल वातावरण महसूसते हुए
मूक-अंधे सुखी !
केवल मैं एक अदृष्य घाव-सा
कब तक रिसता रहूं ।



दीमक लगे स्पर्श

☆ कुमार शिव

दरवाजे की चिक उठाकर वह कमरे से बाहर निकल गया है मुझे ऐसा लगा है जैसे सड़क से एक ट्रक तीव्र गति से गुजर गया हो और धूल भरा झोंका मुझ से लिपट जाना चाहता हो ।

मेरी मेज के अन्दरूनी कोनों में मकड़ी के जाले उलझ गए हैं। कई दिनों से देखता आ रहा हूँ लेकिन उन्हें अभी तक हटा नहीं पाया हूँ ।

आलसी हूँ। सिगरेट पीने वाले सभी आलसी होते हैं। नहीं पीने वाले भी आलसी हैं। समस्त वातावरण आलसी है। जानवरों को उबासियां आने लगी हैं। भैसे तालाबों में आंख मूंद कर पड़ी हैं।

अमेरिका से भार्गव कल ही लौटा है। वही भार्गव जो अभी-अभी चिक उठा कर गया है। गोरा सा तीखे नक्श वाला क्लीन-शेव्ड भार्गव ।

कहता था, अमेरिका में आलस अंकिल के सर के बालों के बराबर है। अंकिल के सर में गिनती के ही बाल हैं। यह मैं जानता हूं। 'पापा, दादा की टांट चिकनी क्यों है ?' बबली का भोलापन भी चिक पर उभरने लगता है। समझदारी या भोलापन ।

मैं सोचता हूँ ...... आलस ..... अमेरिका .. ... अंकिल।

भार्गव के शब्दों में तीनों को मिलाता हूँ फिर एक उबासी लेकर सिगरेट सुलगा लेता हूँ।

सिगरेट का धुआं छत की ओर उठता है फिर रोशनदान से बाहर निकल जाता है। बबली मेरे पास आकर खड़ी हो गई है। उसे भी सिगरेट का उठता धुआं अच्छा लगता है। एकायक वह कुछ पूछती है।

'क्या ?' मैं चौंक उठता हूँ।

"पापा। भगवान बरसात के दिनों में ज्यादा सिगरेट क्यों पीता है ?" सात वर्ष का समझदार प्रश्न मुझे अच्छा लगता है। मैं उसे हाथों पर उठाना चाहता हूँ लेकिन नहीं उठा पाता। नीली दीवार पर लगे उसकी मम्मी के फ्रेम पर मेरी दृष्टि अटक जाती है। उसकी मम्मी यानि मेरी करूणा। जो अब केवल दीवार पर ही रह गई है। शायद मेरी आंखें डबडबा जाएंगी। डबडबाने से पहले ही मैं उन्हें पोंछ लेता हूँ, फिर टूट कर मूढ़े पर गिर पड़ता हूँ। मूढ़े की पीली खपच्चियां मेरा बोझ संभालते-संभालते थक गई हैं। मूढ़े बहुत पुराने हैं। मेरे विवाह के समय भागव ने यही प्रेजेन्ट दी थी।

भार्गव मुझ से अधिक मेरे अन्तस को जानता है। मेरे चेहरे की फीकी हंसी में धुला विषाद उसे स्पष्ट दीख जाता है। जैसे कूड़े-करकट के समीप चुम्बक ले जाकर लोहे का बुरादा बीन लिया हो। ऐसे समयों में वह मुझसे कुछ नहीं कहता बस चिक उठा कर बाहर चला जाता है और फिर उसे आये कितने ही दिन हो जाते हैं।

बबली खिड़की से सट कर खड़ी है। आया रसोई में दूध गर्म कर रही है। रसोई से सब्जी की सौंधी-सौंधी खुशबू आ रही है। इस खुशबू में कुछ तीखापन भी है — आया के मांसल शरीर सा तीखापन।

आया दूध देकर अभी आती ही होगी। बबली को दूध पिला कर बड़ी ही मीठी आवाज में लोरी सुनाएगी।

कुछ ही दिनों से यह लोरी मुझे पसन्द आने लगी है। आया का काजल भी तीखा हो चला है। उसकी आवाज में मिठास भर गयी है। मैं अक्सर घर पर ही रहने लगा हूँ। रसोई में जाने का बहाना ढूंढ़ा करता हूँ। करूणा की सभी साड़ियां आया को दे दी हैं। आया ने स्कूल की नौकरी छोड़ दी है। दोपहर अब वह मेरे घर पर ही गुजारती है। बबली को सुला कर करीब रात के दस बजे अपने घर चली जाती है फिर सुबह जल्दी ही आ जाती है। घर से आने की तथा घर तक जाने की उसकी अपनी

ड्रेस है। लम्बी बाहों वाला ब्लाउज तथा सफेद साड़ी। मेरे यहां काम करने की ड्रेस अलग है। सुबह आते ही ब्लाउज पहिन कर बाहर निकलती है। ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठ कर स्वयं को निहारती है। कभी-कभी मेरी ओर भी देख लेती है फिर बबली को निपटा कर स्कूल भेज देती है और खाना बनाने में जुट जाती है।

सुबह मेरी चाय पीने की आदत नहीं और वैसे आया को चाय बनानी भी नहीं आती—ढेर सी चीनी—ढेर सी पत्तियां—यह भी कोई चाय है। लेकिन उसे अच्छी लगती है।

आया को यहां काम करते हुए दो वर्ष हो गए हैं। करूणा के समय से ही उसका घर पर आना जाना है। करूणा के मुह से ही सुना था—बेचारी दुखिया है। पति की ठुकराई हुई। न कपड़े देता है, न भर पेट खाना। लेकिन फिर भी पतिपरायण। उसके लिये जान देने को तैयार है। मेरे जैसी होती तो ......?"

'तो क्या करतीं? 'मुझे लगता है मैं रसोई के किवाड़ से सटकर खड़ा हूँ और करूणा करछी से सब्जी चला रही है। मेरे प्रश्न को सुनकर अनसुना कर देती है और उसके चेहरे पर लाली बिखर जाती है।

समय हल्की वस्तुओं को उड़ाता आगे बढ़ गया है। ठोस वस्तुएं पीछे ही छूट गई हैं। मुझे अहसास होता है कि मैं भी ठोस हूँ। इसीं से पिछड़ गया हूँ। जैसे हवा का एक झोंका पत्ते-कागज उड़ा कर ले जाता है। पत्थर पीछे छूट जाते हैं बहुत पीछे।

भार्गव कह रहा था कि मुझे शादी कर लेनी चाहिए। आखिर बबली को राहत मिल जाएगी। इस जरा सी आयु में ही मां के प्यार से वंचित हो गई। लेकिन ऐसे समय मुझे तिष्यरक्षिता याद आ जाती है। अशोक की एक पत्नी। जो कुणाल पर आसक्त थी। जिसने कुणाल को अन्धा करा दिया था। उसकी आंखें निकलवा ली थीं। क्योंकि कुणाल ने उसे मां कह कर पुकारा था। सारा दोष अशोक का ही था। उसे वृद्धावस्था में विवाह ही नहीं करना चाहिए था। मुझे लगता है कि मैं भी वृद्ध हो चला हूँ। अशोक जितना ही वृद्ध।

चांद बादलों से निकला है और मैं सड़क पर निकल आया हूँ। बरसात की शाम या तो एकदम नीली होती है या एकदम पीली। लेकिन आज शाम ही नहीं हुई। सुबह सूरज कुछ ही देर के लिये निकला था उसके बाद से बादल ही छाये रहे। और अभी-अभी चांद बाहर आया है।

मैं आज शरीर को थका कर तोड़ देना चाहता हूँ ।

मैं बेराज की ओर बढ़ने लगा हूँ । एक उतार है फिर एक घूम लेते हुए दो चढ़ाव हैं जो मुझे थकाने के लिये पर्याप्त हैं । इस उतार-चढ़ाव के एक किनारे पर सफेद काले ड्रम रखे हैं । दूसरे किनारे से कुछ हटकर एक बहुत ही पुराना लेकिन ताज़ा गढ़ है । बोलचाल की भाषा में गढ़ है लेकिन यह किसी महल से कम नहीं। वैसे अब इसमें गिद्धों के घोंसले हैं और चमगादड़ें लटक रही हैं । शान्त वातावरण में लगता है जैसे इसके झरोकों से कोई झांक रहा है या दो आंखें किसी के इन्तजार में टकटकी लगाए हैं ।

मुझे एक राजा याद आता है और कई रानियां । अवलामीनो भी । मैं बेराज पर पहुँच गया हूं । कुछ सीढ़ियां उतर कर रेलिंग के सहारे खड़ा हो गया हूँ । हवा बहुत तेज चल रही है । मछलियां गुड़प-गुड़प कर रही हैं। झिलमिलाता पानी । हवा और ये सब अच्छा लग रहा है। ऐसे समय में मुझे करुणा याद आ जाती है ।

एक मैले-कुचैले इतवार को इसी बेराज पर पिकनिक मनाने आए थे ।

हल्की फुआरों में करुणा ने भीगना चाहा था। मैंने रोक दिया था । वह उदास हो गई थी । फिर उसके साथ मुझे भी भीगना पड़ा था ।

तब तक भार्गव ने आया को हिदायतें दे दी थीं । आया प्लेटें सजाने लगी थी । भार्गव करुणा के पीछे पड़ गया था । फिर करुणा ने एक गीत सुनाया था । कांपते हुए स्वरों में कांपता हुआ गीत . . . ओह वह शाम ?

मछलियों की गुड़प, झिलमिलाता पानी, सरसराती हवा और वह शाम । मैं सीढ़ियों पर बैठ जाता हूं । सामने दूर किनारे पर कतार-बद्ध रोशनी की परछाइया कांप रही हैं । पानी में सभी परछाइयां कांपती हैं क्योंकि पानी से बिना कांपे नहीं रहा जाता और रोशनियों से वृक्षों से बिना झांके रहा नहीं जाता । सीढ़ियों पर और भी आवाजें बैठी हैं मैं उन्हें सुनने की कोशिश नहीं करता ।

सहसा कोई मेरी ओर आने लगता है । पास आकर रुक जाता है । मैं अपरिचित सा देखने लगता हू ।

'शैलेश!' वह धीमे से कहता है ।

मैं प्रश्नसूचक दृष्टि उठाता हूं ।

'नहीं पहचाना क्या . . . ? मैं सुशील हूँ ।'

'ओह !' मेरे मुंह से अचानक निकल जाता है। सुशील मेडिकल में मेरे साथ पढ़ा था। बस इतनी ही पहचान है।

'अकेले ही आये हो क्या ?' मेरा ध्यान उसके वेडिंग कार्ड की ओर जाता है जो कुछ वर्ष पूर्व आया था। "नहीं ! निर्मला भी साथ है।" लेकिन वह पार्क की ओर चली चली गई है, उसकी सहेलियों ने जिद पकड़ ली थी।"

"हां। करुणा भाभी कहां है। यार बड़े जालिम हो। तुमने उनकी कभी केयर नहीं की। कभी उन्हें भी साथ ले आया करो। खैर अब हम तुम्हारे घर चलेंगे ?'

मुझे लगता है मेरा शरीर वास्तव में टूट गया है। करुणा के देहावसान की बात मेरे मुंह तक आते-आते रह जाती है क्योंकि सुशील बात को अधूरा छोड़कर निर्मला को पुकारने लगता है।

बात वहीं समाप्त हो जाती है।

मछलियों की गुड़प। सरसराती हवा। झिलमिलाता पानी.... सुशील .... निर्मला .... केअर।

नये सन्दर्भ पुराने सन्दर्भों से उलझ जाते हैं। विचारों के चक्र बेराज की दूसरी मंजिल पर लगी लाल मशीन पर घूमते हैं।

निर्मला सुशील के कान में कुछ कहती है। एक क्षण के लिये दोनों के चेहरे करीब आ जाते हैं। मैं लाल मशीन की ओर देखता रहता हूं।

सुशील रेलिंग से सटकर खड़ा हो जाता है। निर्मला मेरे पास आकर बैठ जाती है।

'हम कल आएंगे शैलेश जी !' निर्मला कहती है।

मैं चुप रहता हूँ। आने जाने के मामलों में मैं हमेशा से चुप ही रहता आया हू। दूर कोई दस बार लोहे से लोहा टकराता है। और वे उठकर चल देते हैं।

मैं सीढ़ियों पर ही लेटा रहता हूं।

किनारे की कतार-बद्ध रोशनी उसी तरह कांप रही है.... चांद भी कांप रहा है।

o o o o o

सुबह अभी खिड़की के कुछ नीचे है। खिड़की तक पहुँचते ही सलाखें कमरे

के फर्श पर लेट जाएंगी। घोंसले से कबूतर का जोड़ा उड़ेगा। बबली स्कूल चली जाएगी . . . आया गुनगुनाती हुई बाथरूम से निकलेगी।

आज आकाश बहुत दिनों बाद प्रसन्न हुआ है। मुझे आज ताजगी महसूस हो रही है। बहुत जल्दी ही कोई निर्णय लेना है। उम्र भर अविवाहित रहने का निर्णय या . . . नहीं . . . ! बादल का एक टुकड़ा फर्श पर लेटी सलाखों को लील गया है। सुबह धुंधली हो गई है।

आया अभी-अभी मुझे जगा कर गई है। मेरी आँख सुबह जल्दी ही खुल जाती है लेकिन आंख खोल कर बिस्तर पर करवटें बदलना मुझे अच्छा लगता है।

बबली स्कूल चली गई है। आया ने एक हाथ बाहर निकाल कर रस्सी पर लटकी साड़ी खींची है।

मेरा ध्यान दैनिक कलापों की ओर चला गया है। धूप और तेज हो गई है। फर्श पर लेटी सलाखें गायब हो गई हैं।

क्या करुणा मुझे वास्तव में छोड़ कर चली गई है। तो फिर ये भारतीय ग्रन्थ ?

ये आत्मा न किसी काल में जन्मती है और न मरती है क्योंकि यह अजन्मी, नित्य, शाश्वत और सनातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी यह नष्ट नहीं होती है। आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है . . ."

मुझे धार्मिक ग्रन्थों पर विश्वास नहीं है। करुणा इन पर विश्वास करती थी। गीता पढ़ती थी। सामने बैठ कर मुझे सुनाती थी। मैं कुछ समझ न पाता था। वास्तविकता यह थी कि मैं उसका भोलापन देखा करता था लेकिन वह एकाग्रचित होकर उसी में खो जाती थी। मेरी आंखों में गीता का उद्धरण तैरने लगता है। —"इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि अपने द्वारा स्वयं का संसार-समुद्र से उद्धार करें और अपनी आत्मा को अधोगति में नही पहुँचावें। क्योंकि यह जीवात्मा आप ही तो मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।"

करुणा की आवाज में घुली गीता.. ...अदाह्य . . . आत्मा। कचोटते संस्मरण !

अचानक मेरे कमरे का किवाड़ खुलता है। आया ने एक लाल गट्ठा मेरे समक्ष पटका है और मूढ़े से सट कर खड़ी हो गई है।

'क्या है ?' मैं पूछता हूँ।

"पुराने अखबार वगैरह। अलमारी में बहुत दिनों से ढेर पड़ा था दीमक लग गई है। बेचने से कुछ पैसे तो आएंगे।"

वह गठ्ठर खोलने लगती है। उसकी चंचल आंखें कभी मेरी ओर देखती हैं, कभी गठ्ठर की ओर। वह पतली - पतली अंगुलियों से गांठ खोलती जाती है। मैं उत्सुकता से खुलते गठ्ठर को देखता हूँ। गठ्ठर खुल जाता है।

रद्दी कागजों में उलझी दीमक लगी गीता दीखती है। करुणा की अंगुलियों के स्पर्श दीमक लगे स्थानों पर उभरते हैं। मैं गीता उठाता हूं और बेतहाशा उसे चूमने लगता हूं।



रूपरानी

✤ चन्द्र कान्त 'जोशी'

विरहणी वह बिलकती थी, प्यार-पथ की रूपरानी ।

हिचकिओं से सिसकिओं से श्वास मानो रुक गया था ।।
बाल उलझे बिखरते थे, माथ उसका झुक गया था
धड़कते थे वक्ष रह रह, पीत मुख-मण्डल बना था
आंख में आंसू नहीं थे, हो गया था खून पानी

विरहणी वह बिलकती थी, प्यार-पथ की रूपरानी ।

देखती वह स्वप्न सुन्दर स्वप्न में ही सो गई थी
या किसी की याद में कुछ याद करती खो गई थी
या हो गई थी जड़ किसी पाषाण को ही पूजते
एक टूटी सी लता थी या विरह की थी निशानी

विरहणी वह बिलकती थी, प्यार-पथ की रूपरानी

भार यौवन का उठाया जा सका ना गिर गई थी
पक्षिणी एकाकिनी वह बादलों में घिर गई थी

पार जा सकती नहीं थी लौट आ सकती नहीं थी
क्या कहूँ कितनी करुण थी उस जवानी की कहानी

विरहणी वह बिलकती थी, प्यार-पथ की रूपरानी ।

पाल पिंजड़े में रखे थे भाव, इच्छा, कामनायें
और सहती जा रही थी नित नई वह यातनायें
प्यास जमती थी हृदय में मौन लेकिन होंठ उसके
कह अमर देती पिपासा, सब उसे कहते दिवानी

विरहणी वह बिलकती थी, प्यार-पथ की रूपरानी ।

कौन है ? जो बढ़ उसे अब बांह का आधार देगा
खोल कर अपने हृदय को प्यार का उपहार देगा
कौन लायेगा बहारें एक पतझर से हृदय में
कौन सींचेगा लता को औ' करेगा अंक धानी

विरहणी वह बिलकती थी, प्यार-पथ की रूपरानी ।।



मुक्त छन्द और निराला

★ डॉ० निज़ाम उद्दीन

भारतीय काव्य-शास्त्र में छन्दों का विशेष महत्व है। शब्द-योजना ही वहां छन्द-बद्ध रूप में परिलक्षित होती है। वेदों में छन्दों का व्यापक रूप प्राप्त होता है—'छन्दः पादौ तु वेदस्य' के आधार पर छन्द वेदों का चरण है। छन्द, अक्षर, मात्रा तथा बिराम से नियम-बद्ध रचना कहलाती है। जगन्नाथ प्रसाद के मतानुसार छन्द की परिभाषा इस प्रकार है :—

मत्त वरण यति, गति,
नियम, अन्तहि समता वन्द
जा पद रचना में मिलें,
भानु भनत सोई छन्द ।

छन्द का शाब्दिक अर्थ है आह्लादन। इसकी व्युत्पत्ति 'चदि' धातु से हुई है—"चदि आह्लादनै दीप्तौ च।" फिर चदरेणदेश्च छः सूत्रानुसार 'च' 'छ' का रूप धारण कर लेता है, अतः 'चन्दति' का रूप 'छन्दति' हो जाता है और वह हर्ष तथा दीप्ति उत्पन्न करने वाला होता है, यही छन्द है—"चन्दति हृस्यति ऐन दीप्यते वा तच्छन्द" (पाणिनि मुनि)। छन्द में लय एक अनिवार्य तत्व है और लय ही उसका प्राण है, वही आनन्दोपलब्धि का कारण है।

पन्त जी ने छन्द के विषय में 'पल्लव' की भूमिका में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन है। कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है, जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति सुरक्षित रखते हैं, जिनके बिना वह अपनी बधनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है उसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के मोड़ों मे कोमल, सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियत्रित सांसें नियंत्रित हो जाती हैं, तालयुक्त हो जाती हैं, उसके स्वर में प्राणायाम, रोमों में स्फूर्ति आ जाती है, राग की असम्बद्ध झंकारें तक वृत्त में बंध जाती, हैं तथा उनमें परिपूर्णता आ जाती है।

प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक छन्दबद्ध काव्य रचने की परम्परा चली आ रही है। क्या संस्कृत काव्य, क्या हिन्दी का आदिकालीन, भक्तिकालीन और रीतिकालीन काव्य सभी स्थानों पर छन्दयुक्त रचनाए प्राप्त होती हैं। कवियों का छंद के प्रति विशेष लगाव एव अभिरुचि दृष्टिगत होती है। आधुनिक युग में जहां साहित्य की अन्य विधाओं में परिवर्तन हुआ, पुरातन विश्वासों का स्थान नूतन विश्वासों ने ग्रहण किया पुरानी रूढ़ियों के जीर्ण-शीर्ण भवन भग्न हुए वहां नई धारणाओं ने जन्म लिया। कविता भी उसी जीर्ण केंचुली के छन्दों में बंधी थी, उसे भी स्वतंत्र वातावरण की अपेक्षा थी अत: भारतेन्दु श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों की छन्द-बद्ध कविता-सरिता प्रवाहित होते हुए भी महाकवि निराला ने एक नई मुक्तछंद की उमड़ती, उफनती, वेगशीला जलधारा उसमें मिलाई। निराला की मान्यता थी कि जब मनुष्य मुक्ति, स्वतंत्रता का अभिलाषी है तो फिर कविता-कामिनी को हम छन्दों की चार-दीवारी के अंदर बंद करके क्यों रखें। निराला के मुक्त छद के विषय में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने समीचीन विचार व्यक्त किया है—"अन्तःपुर के समस्त वैभव और उसको सारी स्वतंत्रता से मुक्त कर कविता-देवी को खुली हवा में लाए: उन्होंने कविता-नारी के बुरके या पर्दे को दूर कर दिया। पर्दा-प्रथा के समर्थकों के लिये यह एक अनहोनी और असह्य बात थी . . . परन्तु कविता-कामिनी को खुली हवा में ले आने के बाद नये युगोपयोगी परिधान भी उसे पहनाये गये।"[1] मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता भी मुक्त होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के वधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग होना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिये होते हैं—फिर भी स्वतत्र, इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिये अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उससे साहित्य में एक

1. कवि निराला—आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी पृ० १६९

प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है[1]। और निःसंदेह निराला ने मुक्त छंद के द्वारा काव्य का कल्याण किया जिससे उसमें नई स्वतंत्र चेतना का अविर्भाव हुआ।

परम्परागत रीति-रिवाज और रूढ़िवादिता से जब मानव जीवन जकड़ जाता है तब उसमें जड़ता आ जाती है, उसका विकासोन्मुख उज्ज्वल भविष्य तिमिराच्छन्न हो जाता है उसकी नवीनता तथा मौलिकता शून्य हो जाती है। ठीक यही दशा जब काव्य की हो गई (विषय और छंद के क्षेत्र में) तब परम्परागत विषयों को, छंदों को वहिष्कृत कर नवीन विषयों एवं छंदों का आविर्भाव हुआ। इस ऐतिहासिक तथ्य का प्रवल समर्थक यही मुक्त छंद है। टी० एस० इलियट को भी यह इसी रूप में स्वीकार्य है — It was a revolt against dead form and a preparation for new form or for the renewal of the old.[2]

इस प्रकार मुक्त छंद हिंदी और अंग्रेजी काव्य — दोनों में स्वाभाविक विकास एवं प्रचार का द्योतक है। जिन्होंने मुक्त छंद को 'रबड़-छंद', 'केंचुआ छंद' आदि नामों से अभिहित कर नाक-भौं चढ़ाई थी वह अज्ञानता के कारण ही। यह बात नहीं कि मुक्त छंद का पिंगलशास्त्र से कोई सम्बन्ध न हो। उसमें एक विशिष्ट प्रवाह है, विशिष्ट सलाप है, उसमें लय का, जो छंद की आत्मा है, अभिनिवेश है। आत्मा तो वही है, केवल कलेवर में अंतर है। निराला जी ने अपने मुक्त छंद को अग्रांकित पंक्तियों में इस प्रकार परिभाषित किया — "मुक्त छंद तो वह है जो छंद की भूमिका में रहकर भी मुक्त है। ... मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह है। वही उसे छंद सिद्ध करता है।"[3] 'जुही की कली', 'बादल राग', 'जागो फिर एक बार', 'संध्यासुंदरी', 'भिक्षुक' 'विधवा', 'तोड़ती पत्थर', 'प्रेयसी', 'पंचवटी-प्रसंग', 'शेफाली', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' आदि कविवर की श्रेष्ठ रचनाएं मुक्त छंद में ही विरचित हैं। 'अनामिका' की 'प्रगल्भ प्रेम' कविता में उन्होंने मुक्ति का आग्रह इस प्रकार किया है : —

"आज नहीं मुझे और कुछ चाह
अर्ध विकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह
गजगामिनी, वह पथ तेरा संकीर्ण, कंटकाकीर्ण
कैसे होगा उस से पार।"

---

1. निराला – परिमल की भूमिका, पृ० १४
2. Selected Prose P. 55
3. परिमल की भूमिका

महाकवि निराला के स्वच्छंद एवं विद्रोही व्यक्तित्व का अपर रूप मुक्त छंदों में आकर अभिव्यंजित हुआ। काव्य के बहिरंग को स्वच्छंदता प्रदान करने वाले पुरोधा के रूप में वह स्तुत्य हैं। "आदि से अंत तक उनकी कविताओं में प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह बना हुआ है। चाहे वे सामाजिक रूढ़ियां हों अथवा साहित्यिक, इनका व्यक्तित्व इनकी रचनाओं में सर्वत्र नितांत परुष रूप में अभिव्यक्त हुआ है। ये हिंदी के अकेले परुष कवि हैं। व्यक्तित्व की जैसी निर्बाध अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में हुई है वैसी अन्य किसी आधुनिक कवि में नहीं हुई।[1] इनकी इस परुष रूपा अभिव्यक्ति का आरम्भ में आलोचकों ने खूब खुल कर विरोध किया और अपनी भड़ास निकाली :—

पिंगला जाल भाव शत्रु हैं,
इनको गोली मार।
करो धड़ाधड़ रबड़ छन्द में,
कविता का विस्तार।

पर कविता-कानन-केसरी निराला शक्ति में, साहसमें, शौर्य में किसी से कम न था। उस का अपराजित व्यक्तित्व मुक्त-छंद का सूत्रधार बना। 'सरस्वती' से अस्वीकृत, लौटाई गई उनकी 'जुही की कली' ने जब 'मतवाला' में अपना अभीष्ट स्थान ग्रहण किया तब से ही मुक्त छंद का प्रथम प्रकरण प्रारम्भ हो गया। यह एक सुघर एवं ओजवती कृति है। 'जुही की कली' का १९१६ में वही महत्व है, जो १८५५ में वाल्ट ह्विटमैन की कविता 'लीव्ज़ आफ ग्रास' का था। अंग्रेजी काव्य में भी ब्लैंक वर्स का प्रचलन 'रोमांटिक रिवाइवल' के साथ हुआ। उस समय मुक्त छंद में कविता का मोह वृद्धि प्राप्त कर रहा था। कालरिज ने स्वीकार किया—"श्रेष्ठतम कविता बिना छंद के भी सम्भव है।" अंग्रेजी के प्रभाव से बंगला में 'अमित्र छंद' के आधार पर काव्य-रचना की जा रही थी। निराला पर बंगला का विशेष प्रभाव पड़ा। वस्तुत: उनकी मातृभाषा बंगला ही थी, हिन्दी नहीं और इसी कारण उन्होंने पहले बंगला में ही रचना आरम्भ की। परिणामत: बंगला के निकट होने के कारण उनपर मुक्त छंद का प्रभाव शीघ्र पड़ा और मुक्त छंद में कविता आरम्भ की। यह प्रभाव कवि की क्रांतिकारी प्रकृति से भी मेल खा गया और इसका प्रकाशन 'परिमल' के प्रथम संस्करण में द्रष्टव्य है।

निराला के यहां मुक्त छंद दो रूपों में प्राप्य है, एक, मुक्तक या स्वच्छन्द छंद, दूसरे, मुक्त गीत। 'परिमल' के तीसरे खण्ड में मुक्त छंद की रचनाएं संगृहीत हैं। ये

1. प्रो. क्षेम—छायावाद के गौरव चिह्न पृ १५३

वर्णवृत वाली रचनाएं हैं, इनमें अन्त्यानुप्रास नहीं। 'जुही की कली' की आधारभूमि यही है। मुक्तगीत में मात्रवृत रचनाएं हैं, ये 'परिमल' के द्वितीय खण्ड में प्राप्य हैं। इनमें अन्त्यानुप्रास है, ये गेय हैं। प्रथम छंद की रचनाओं में पढ़ने का आनन्द आता है तो दूसरे छंद की रचनाओं में गाने का, उनमें गेयत्व अधिक है। मुक्त-गीत की उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियां प्रस्तुत की जाती हैं :—

"मां, मुझे वहां ले चल
देखूंगा वह द्वार
दिवस के पार
मूर्छित हुआ पड़ा है जहां
वेदना का संसार।"

और मुक्त छन्द में :—

"चारों ओर
पुष्प युवती के कोर
तरुण दल अधर अरुण
जीवन सुवास
मन्द गति से जो पास।"

मुक्त छंद में चरणों की संख्या तथा विस्तार स्वतंत्र रूप में ही होते हैं तो भी उनमें लयात्मकता आद्योपांत एक सी हो रहती है, उनमें स्वाभाविक माधुर्य रहता है। जिस प्रकार मुक्त छंद में कवि छन्द के निश्चित बन्धन तोड़कर भी लयादर्श का अनुपालन करता हुआ छंद की भूमि को नहीं छोड़ता, इसी प्रकार अन्त्यानुप्रास के बन्धन तोड़कर भी इसकी माधुरी को स्वाभाविक मूल्य एवं आकर्षण प्रदान करता है। इसका मूल कारण मनुष्य की संगीत और सौंदर्यप्रियता है।[1] मुक्त छन्द तुकांत भी होते हैं और अतुकांत भी। उनमें संगीतात्मकता, नाटकीयता, तथा अनुप्रास-सौष्ठव का अद्भुत समन्वय भी होता है। 'जुही की कली' मुक्त छंद में है परन्तु उसकी लयात्मकता (अक्षर मात्रिक छद में) हस्तामलकवत् सिद्ध है :—

विजन - वन - वल्लरी पर
सोती थी सोहाग भरी स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल कोमल तनु तरुणि जुही की कली
दृग बंद किए, शिथिल पत्रांक में वासंती निशा थी।

---

1. डा॰ पुत्तुलाल—आ॰ हिन्दी काव्य में छन्द योजना—पृ॰ ४०६।

विरह मधुर-प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल
आई याद बिछुड़न से
मिलन की वह मधुर बात
आई याद चांदनी से धुली हुई आधी रात
आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात।

मुक्त छंद का पूर्ण वैभव "शैफालिका', 'संध्या सुन्दरी', 'बादल राग' आदि रचनाओं में दृष्टव्य है जहां मात्रिक दृष्टि से सौंदर्य भी विद्यमान है और ये छन्दशास्त्र के निकट जान पड़ती हैं। 'सध्यासुन्दरी' अष्टक पर्व या अष्टमात्रिक पर्व पर आधारित रचना है, यह अति पुरातन पर्व है :—

"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे - धीरे - धीरे
तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर
किन्तु गम्भीर, नहीं है उसमें हास-विलास।"

'भर देते हो' कविता में भी अष्टमात्रिक पर्व है। शुद्ध घनाक्षरी न सही, घनाक्षरी लयाधार पर 'प्रेयसी' कविता दृष्टांत रूप में ली जा सकती है :—

घेर अंग अंग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की
ज्योतिर्मयी लता सी हुई मैं तत्काल
देख मैं रुक गई
चल पद हुए अचल
आप ही अपल दृष्टि
फैला समष्टि में स्तब्ध हुआ मन
दिए नहीं प्राण जो इच्छा से दूसरों को
इच्छा से प्राण वे दूसरों के हो गए।

मुक्त छद में संगीत, लय, प्रवाह सभी कुछ होता है। वे वस्तु का सम्यक् चित्र प्रस्तुत करने में प्रशंस्य हैं। उनकी ध्वन्यात्मकता भावों की चित्रशाला सुसज्जित

करने में पूर्णतया सशक्त है। वर्ण्यवस्तु का, दृश्य का मूर्त रूप समक्ष साकार हो जाता है। 'बादल राग' की निम्न पक्तियां देखिये :—

"झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर
झर-झर-झर निर्झर गिरि-सर में
कर मरु, तरु - मर्मर सागर में,
सरित - तड़ित - गति - चकित पवन में
मन में, विजन - गहन - कानन में
आनन - आनन में रव घोर कठोर।"

महाकवि निराला का मुक्त छद छंद-शास्त्र की अवहेलना करता हुआ भी एक दम उससे दूर नहीं, उसके निकट ही है। उसकी मुक्ति में भी बधन है। भले ही वह मात्राओं में नियंत्रित न हो, पर लय, प्रवाह और संगीत उसे छंद की भूमिका पर ही उतारकर रख देते हैं। कवि के विद्रोही व्यक्तित्व को यह ग्राह्य न था कि वह परम्परानुवर्तित छद-बधन को अंगीकार करते, अतः उन्होंने परम्परा का पालन न कर दूसरा ही अभिनव मार्ग ग्रहण किया जिसके अन्वेषण का श्रेय भी उन्हीं को दिया जाना न्यायोचित है। वास्तव में रूढ़ियों का सबसे प्रबल विरोधक यदि कोई इस युग का कवि है तो वह है निराला। 'निराला' सार्थक नाम है, अपने में ऐसा निराला कि उसके निरालेपन का रंग आज के प्रायः सभी कवियों पर बड़ा पक्का चढ़ा है। क्या नई कविता उसके ऋण से कभी उऋण हो सकेगी ? इस कविता का बहु-प्रयुक्त तथा बहु-प्रिय यदि कोई छंद है तो वह निराला का ही मुक्त छंद है। आज तो 'निराला' का पर्याय मुक्त छंद हो गया जान पड़ता है।



सुगम-मिलन

☆ स्व० बंसीलाल सूरी

तुम मेरे प्यार ही का
साक्षात्कार हो,
सुहृद,
और मेरे शिखिरोच्च
लावण्य - कल्पणा - मंदिर की
रम्य - मूर्ति !
अतः तुम्हारे सुगम - मिलन
के लिये
मैं स्वयं अपने प्यार ही को
तुम्हारे अनुपम रूप में
परिणत कर लेता हूं ।
मेरे प्यार में
लावण्य है,
माधुर्य भी और
आकर्षण भी;
फलतः यह सभी गुण

स्वत: तुम्हारी
आकार - प्रतिमा में
समाविष्ट हो जाते हैं
जिससे अपने ही
अनुराग - बल से,
यथेच्छा,
मैं अपनी विरहाग्नि को
मिलनामृत - जल से
स्वयं बुझा लेता हूं ।
किन्तु,
मिलन के उस क्षण,
मुख - स्पर्श के लिये,
जब मैं अपने ओष्ठ
तुम्हारी ओर बढ़ाता हूं
तो मैं अपने - आप को
इतना वामन पाता हूं कि
मेरे होंठ तुम्हारे
मुखचन्द्र की ऊंचाई तक
पहुंच नहीं पाते
और मैं अपनी
भरसक अनुराग - तीव्रता
और परिपूर्ण भावोत्तेजना में
केवल मध्यवर्ती
अंतरिक्ष - शून्य को ही
चूम लेता हूं और
लगता है फिर भी जैसे
मैंने तुम्हारे सकल
कलेवर को ही
चूम लिया हो !
इसी प्रकार
जब मैं अपने
प्यार - वेग में
तुम्हें अपने आलिंगन में

लेने को बांहें फैलाता हूं
तो पाता हूं
तुम स्वयं तो
मेरे बाहु - पाश से
लुप्त हो गये हो
और मेरी भुजायें
मेरे अपने ही वक्ष पर
जुड़ी की जुड़ी
रह गई हैं;
लेकिन लगता है
तुम्हारी इस लुप्ति - क्रिया के
बावजूद
तुम समूचे मेरी
कल्पणा के
आलिंगन - पाश में
आन फंसे हो !



विद्रोहों की चौखट पर

★ दीपचन्द्र निर्मोही

उजले - उजले गोरे - से
कोरे - दर्पण के मुख पर
लिप गई स्याहियां गाढ़े बिखरे हुये धुयें की ।

उदासी निरी ही गहरी
उतर आई याद अभी मन के किसी कोने में ।
कलियां अब महकेंगी क्या
ढल गई उमर सारी ऐसे ही तो रोने में ?

संदर्भ कहूं आगत का
या कर्म की रेखा इसे
बदल गई नियति ही अपने आंगन के कुयें की ।

छाया की आहट से ही
बिदकता है अब तो तन का यह सारथी ।
जाने क्यों आप से ही
सुलगती हुई किरण की उतारता है आरती ?

विद्रोहों की चौखट पर
सुस्ताने को कहता है
रुनझुन से अर्थ क्या है बजते हुए बिछुये का !



हास्य कथा

कलाकार

✱ शिव रैना

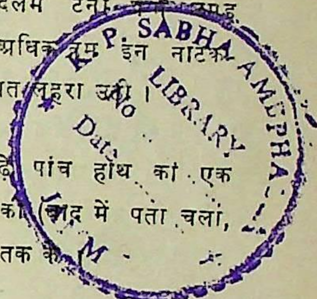
ठण्डी हवा के मादक झोंके हमारे श्यामल बदन में लहरें-सी पैदा कर रहे थे और नीले आसमान पर टंके छुटपुट तारे आंखें मार रहे थे । हमने सुना—दूर सड़क से बड़ी अजीब-सी आवाज़ें आ रही थीं; जैसे कोई ताज़ी विधवा ख़ूब रो-धो लेने के बाद, गला बन्द हो जाने के कारण, बड़े भयंकर स्वरों को जन्म दे रही हो । हमने अपने अलसाए शरीर को सफेद चादर की गिरफ़्त से आजाद करते हुए करवट बदली, और इकलौती आंख को मलते हुए कान खड़े किए । ग़ौर करने पर पता चला, कि आवाज़ एक छकड़े की थी, जो अपना स्वागत आप करता चला आ रहा था ।

'जिप्सियों का होगा ।' हमने सोचा, और फिर सोने की कोशिश करने लगे ।

सुबह ऑफिस जाते हुए, कई मदद नंग - धड़ंग शरीरों तथा एक नये छकड़े पर नज़र पड़ी । एक घने शहतूत के वृक्ष-तले पड़े थे ये लोग ।

'रामलीला' के आध्यात्मिक दिन थे । मर-खपकर शामको कार्यालय से घर लौटे, तो नंग-धड़ंग जीवों की कायापलट देखकर दंग रह गये । प्रसन्नता का पारावार न रहा । सड़क के बाएं किनारे पर, वृक्षों के बीच, एक मंच-सा बनाया गया था, जो करीब से देखने पर एक नाट्यशाला का रूप धारण करने पर विवश हो

जाना था । खादी, सूती व रेशमी टुकड़ों तथा झुकी कमर वाले कई बांसों की सहायता से, पर्दे भी लहरा रहे थे । फिलम 'सम्पूर्ण-रामायण' का एक फ़र्सूदा व बड़ा - सा पोस्टर खूब ऊपर टांगा गया था । पता नहीं, यह विज्ञापन का काम कर रहा था, या साइन-बोर्ड का ! इन लोगों के प्रति हमारे दिलमें टनों [illegible] उमड़ आया—सहानुभूति भी हुई; क्योंकि सस्ती क़िस्म की फिल्मों से अधिक हम इन नाटक कंपनियों के रसिया हैं । सचमुच, सब कुछ देखकर हमारी तबीयत लहरा उठी ।



इस रामायण 'कम्पनी' के कुल नौ सदस्य थे—मांढे पांच हाथ का एक काला - सा वृद्ध, चार सुन्दर व बलिष्ठ युवक, एक खूबसूरत लड़का (बाद में पता चला, कि वह हीजड़ा था) और तीन सुकुमार बच्चे——छह से नौ वर्ष तक के ।

वास्तव में नाटकों - नौटंकियों पर हम बचपन से ही जान छिड़कते आए हैं । इकलौती सन्तान होने के कारण, मां - बाप का ढेरों प्यार - दुलार हमें उपलब्ध रहा है । हमारे घर वाले हमें उच्च शिक्षा के लिए विलायत भेजना चाहते थे, मगर हम चूँकि सोते - जागते नाटकों के सपने लेते रहते थे, उन्हें घुटने टेकने पड़े । वे जान गये थे, कि बेटा कॉमेडियन या विलेन (खलनायक) बनकर ही रहेगा । इस प्रकार, यह भयकर रुचि अभ्यास का रूप ले बैठी । और इसी प्रयास में, एक बार रावण ने लक्ष्मण (याने हम) पर जो तीर छोड़ा, तो वह लक्ष्मण की छाती के बजाय, उसकी बाईं आँख पर लगा । कोई संजीवनी काम न आई । कीमती आंख से हाथ धोकर, हम अभिनय - क्षेत्र के भी (लगभग) अयोग्य हो गए । मगर रुचि ने दामन न छोड़ा । हमने मुश्किल से दस वर्ष स्कूल में गुजारे । हमें याद है, काफी प्रयत्नों के बाद जब हमने मैट्रिक की परीक्षा पास की, तो हमारे घर वालों ने शुद्ध 'रथ छाप' घी के लड्डू बांटे थे । लड्डू बांटने वाली हमने कोई और परीक्षा पास नहीं की । इसके लिए बाद में हम पछताए भी । किन्तु, पढ़ाई में पनप सकने वाले विचार हम बहुत पीछे छोड़ आए थे । सिफारिशों की बदौलत, मन मसोसकर, हम एक मामूली-से आफिस में जूनियर क्लर्क होकर रह गये । नौकरी क्या, बस, १६० रुपये मासिक में झख मारते थे । मां - बाप से प्राप्त नियमित जेब-भत्ते को मिलाकर, हमारा मासिक वेतन साढ़े चार सौ रुपये तक जा पहुँचता था ।

घर पहुँचकर हम जल्दी - जल्दी खा - पीकर तैयार हो गये और तत्काल रामलीला कंपनी के डायरेक्टर शामो से मिले । हम जैसे खालिस नाटक - प्रेमी को पाकर वह भी दिल खोलकर मिला । नाटक के निर्देशन तथा व्यवस्था में हमने भी यथायोग्य हाथ बंटाया । रामलीला शुरु हुई, तो हमें बैठने के लिए फ्रंट - सीट दी गयी । ईंटों की सहायता से खड़ी की गई दो टांग वाली कुर्सी केवल हमें दी गयी ।

रामलीला के पात्रों का परिचय भी सबसे पहले हमीं से करवाया गया था। गांव के सैंकड़ों लोग रात को नाटक देखने आए। व्यवस्था, निर्देशन तथा अभिनय का वर्णन करने के लिए हमें शब्द नहीं मिल रहे। मनोरंजन व भक्ति - रस का अद्भुत संगम था।

नाटक का आरम्भ हुआ, तो हमें यूं लगा, जैसे रामलीला का स्थान हमारा पिछड़ा ग्राम नहीं, बल्कि पेरिस का कोई मनचला थियेटर है। रामचन्द्र जी ने कार्डुराय की खुली बैल -बॉटम पहनी थी, तो सीता माता का स्कर्ट और बाटा की अधघिसी सैंडिल कयामत ढा रहे थे। नौ वर्षीय लक्ष्मण जी जल - सेना के कैडेट लग रहे थे, और उनका धनुषबाण उनसे दस वर्ष बड़ा लगता था। छह वर्षीय हनुमान जी पूंछ विहीन थे और वे बीच - बीच में जेब से कोई खाद्य - पदार्थ निकालकर ग्रहण करते जा रहे थे। उनके सुकोमल शरीर पर अब्दुल्ला-कट बास्कट खूब फब रही थी।

"अरे, हनुमान जी की पूंछ कहां है?" एक ग्रामीण दर्शक ने आवाज लगाई।

"क्षमा कीजिए। वो ड्राईक्लीनिंग के लिए भेजी गयी है!" अभिनेता-वर्ग में से उत्तर मिला।

हनुमान जी की वानर - सेना को देखकर 'नौनिहाल शिशु - प्रतियोगिता' की याद आ जाती थी। उधर रावण अलग पेंच - ताब खाते हुए अपनी फेल्ट-कैप, नकली दुनाली बंदूक, क्लीनशेव्ड चेहरे और रेडियम - युक्त कलाई - घड़ी पर हाथ फेरे जा रहा था। रावण के दरबार में एक टांगवाली लड़खड़ाती कुर्सी, एक पीला स्टूल तथा फटी दरी अपने वैभव का खुला प्रदर्शन कर रहे थे। रामचन्द्र जी ने मुकुट की जगह खटाऊ - मिल्स का एक मैला - सा रूमाल सिर पर बांध रखा था और वे अपनी कोकाकोला - शर्ट की जेबों से इलायची निकालकर गला तर करते जाते थे। दृश्य-परिवर्तन, कपड़े बदलने, पार्ट समझाने तथा खान-पान के सारे काम भी दर्शकों के सामने ही किए जा रहे थे। लोगों को जुम्हाइयां आ रही थीं; मगर वे अन्तिम दृश्य तक अभिनेताओं का साथ देने पर तुले थे।

कुल मिलाकर, सब कुछ मनोरंजक व विचित्र था। ग्रामीण जनता आनन्द, श्रद्धा तथा उत्सुकता के झोंकों में बही जा रही थी। रामचन्द्र जी ने एक स्थान पर रावण से कुछ इस प्रकार भेंट की—"मर्दूद! छोड़ दे अपनी सीता को, वर्ना तेरी खाल खींच लूंगा। मेरी ताकत तू क्या जाने, मूर्ख!" और रावण ने राइफल के

सेफ्टी - कैंच पर हाथ रखते हुए जवाबी हमला किया। पात्रों की भाषा ऐसी थी, कि दूसरा वाक्य सुने बिना पहले वाक्य का अर्थ समझना कठिन था। अभिनय - कला चरमसीमा पर थी। पात्रों के अभिनय में फिल्म - त्रिमूर्ति देवानन्द, दिलीप तथा राजकपूर के अभिनय का अद्‌भुत सम्मिश्रण था। रामलीला के दौरान, कम - से - कम तेईस मध्यान्तर हुए। मध्यान्तरों के समय 'आवारा हूँ' से लेकर 'दम मारो दम' तक के समस्त फिल्मी गीत बड़ी फुर्ती से दोहरा दिए गए। दर्शक - मण्डली भजन - रस में डूब - डूब जाती थी। श्रद्धालु सज्जन बीच - बीच में पुरस्कार भी भेज रहे थे। पुरस्कार - प्राप्ति की सूचना बड़े प्यारे ढग से दी जाती थी। शामो मियां हाथ में भोंपू लेकर, फटे स्वर में चिल्लाता—"रशीदो, जो लछमन के रूप में आपके सम्मुख बिराजमान है, के एक्ठिग तथा भजन से खुस होकर, गांव के लाला खिरतीराम जी सवा रुपया का 'गुप्तदान' देवे हैं। हम उनका धन्यवाद करे हैं !"

हमने भी तीन रुपये दो किस्तों में पुरस्कार स्वरूप प्रस्तुत किए। हमारी दानशीलता की घोषणा बड़े जोरदार शब्दों में की गयी। हम निहाल हो गये। नीली हाफ - पैंट पहिने हनुमान जी की वीरता तथा भजनों ने हमारा मन मोह लिया था। स्वर मोटा होने के बावजूद, हनुमान जी की आवाज मुहम्मद रफी से मिल रही थी। संजीवनी - बूटी लेने जाते हुए उन्होंने 'दिल मेरा एक आस का पंछी . . .' भजन गाकर दर्शकों को मत्र - मुग्ध कर दिया था।

आखिर रात्रि के एक बजे यह धार्मिक - कार्यक्रम समाप्त हुआ और मीठी गोलियों का प्रसाद बांटा गया। हमें एक लालीपाप नैवेद्य में मिला। कइयों को बिस्किट के टुकड़े और टाफ़ियाँ भी मिलीं। रामायण 'कम्पनी' के सभी अभिनेता हमसे मिलकर बेहद प्रसन्न हुए। शामो मियां ने हमारी रुचि तथा नाटक - प्रियता की बढ़ - चढ़कर प्रशंसा की थी। उन लोगों ने उस रात हमें अपना 'विशेष अतिथि' बनाया। इस 'शो' से इन लोगों को लगभग दो सौ पांच रुपये की आय हुई थी। शायद इसी खुशी में मिठाई और फलों तथा स्वादिष्ट भोजन का आकर्षक प्रबन्ध किया गया था। हम सबने डटकर भोजन किया। कस्टर्ड की प्लेटों पर अन्त में केवड़ा छिड़ककर दिया गया। इस गरीब 'कम्पनी' के शाही ठाठों ने हमें हैरान कर दिया।

काफी रात हम लोगों ने बातचीत में गुजारी। शामो बोला—"सेठ, हम गरीब कलाकार हैं। दो - एक शो से ज्यादा हम लोग एक जगह पर नहीं दिखाते। साल में हमारे काम का यही सीजन होता है। नये - नये तजरुबों से भी हम लोग लाभ उठाते हैं। इधर भारतीय फिल्मों के ड्रेस, स्टट एक्टिंग और कार्य - प्रणाली को भी हम यथासम्भव अपना रहे हैं। इस धन्धे में ज्यादा पूंजी की जरूरत भी नहीं है।

हमारा गुजारा बखूबी चल जाता है, परसों तक हमारा सैकेंड-हैंड ट्रक भी आने वाला है। रामलीला-सीजन के बाद, हम प्राइवेट बिजनेस करते हैं। रिहर्सल वर्ष-भर चालू रखते हैं। अब आप-जैसे कला-पारखी के सुझावों से लाभ उठाएंगे। अगली बार हमारी अनेक खामियां हिरन हो चुकी होंगी। गायकों और गीतकारों की हममें कमी नहीं है। इन कलाकारों में से कई नामी पहलवान हैं। मैंने स्वयं कई फिल्मों में हरकारे और वेटर के रोल किए हैं....।"

हम और भी प्रभावित हुए। जी करता था, अभी घर-बार त्याग कर इनके साथ हो लें। किन्तु, सरकारी नौकरी, इकलौती आंख तथा वृद्ध माता-पिता अष्टधातु की बेड़ियों का काम कर रहे थे। लाचार, लहू का घूंट पीकर रह गए और इतना ही बोले—"दोस्तो! तुम मेरा दिल साथ लिए जा रहे हो। फिर भी कभी जरूर मिलना।" और सारे कलाकारों ने मुस्कानों में उत्तर दिया।

और, अपनी समतल-सपाट मैदान-जैसी जिन्दगी की वह अविस्मरणीय रात हमने इन सच्चे कलाकारों के साथ, नीली छतरी तले, धरती माता की महकती गोद में व्यतीत की। खूब गहरी नींद आई उस रात। आंख झपकने से खुलने तक, बराबर स्वप्न आते रहे—हमारे मन-भावने सपने; जो कभी वास्तविकता का जामा न पहन सके थे। हां, एक बार पुनः वही पिछली रात्रि का विधवा-का-सा मजबूर क्रन्दन हमारे अधसोए कानों से टकराया; उस समय हम स्वप्न में दो आंखों वाले हनुमान बने पार्ट कर रहे थे और दर्शक मुग्ध हो रहे थे।

पौ फटी। गांव के अभ्यस्त मुर्गों की पुरानी, परिचित चीखोपुकार से चौंककर हमने करवट बदली, तो बदले ही रह गये। हम वाकई हनुमान बने पड़े थे —— किन्तु पूंछ-हीन तथा एक आंख वाले। हमारे सींकड़िया शरीर पर मात्र एक लाल अण्डरवियर, विशाल समुद्र में नजर आते द्वीप के समान, चिपटा हुआ था। हमारी नयी-नवेली पतलून, टेरीलीन की कीमती कमीज, ६७ रुपये के करारे नोट, अढ़ाई रुपये की रेजगारी, किस्तों पर खरीदी गयी 'लक्की रिस्टवाच', कीमती जूता, सोने का यन्त्र, सोने की अंगूठी और हरा चश्मा—सब कुछ—रामलीला 'कम्पनी' वाले किसी अगले शो में इस्तेमाल करने के लिए ले गए थे!

हमने ठण्डी धूल से सने अपने कटहल-नुमा शरीर को बड़ी बेबसी से निहारा और फिर तड़पकर रह गये। सिर पर दो-एक दोहत्थड़ भी दे मारे।

उधर सूर्य जन्म ले रहा था, और इधर हम ओलंपिक-दौड़-प्रतियोगिता में भाग लेने वाले किसी इन्टरनेशनल खिलाड़ी की भांति, रामलीला-स्थल से जान छोड़कर, अपने 'कलाकार-निवास' की ओर भागे जा रहे थे।



कश्मीरी भाषा एक परिचय

★ डॉ० जवाहर लाल हण्डू

O. कश्मीरी भाषा, कश्मीर की घाटी तथा जम्मू-कश्मीर राज्य के कुछ आस-पास के इलाकों में बोली जाती है।[1] कश्मीर घाटी के निवासी अपनी भाषा को [कांशुर] तथा अपने देश को [कशीर] कहते हैं।[2]

१. 'दरद' ('दरदिस्तान' के निवासियों के लिए 'दरदी') शब्द बहुत प्राचीन है।[3] दरद भाषा परिवार, पारम्परिक रूप से तीन भागों में विभक्त है।[4] दरद भाषा परिवार में कश्मीरी के स्थान–तथा इसकी उत्पत्ति –पर, यद्यपि निरन्तर रूप से विवाद जारी है, परन्तु अब तक इस प्रश्न का कोई ठोस उत्तर नहीं दिया गया है। इस प्रश्न को सर्वप्रथम ग्रियर्सन (१९१५) ने उठाया था। उनके अनुसार, भाषा-शास्त्रीय दृष्टि से कश्मीरी का स्थान विशिष्ट है, क्योंकि इसके कुछ लक्षण तो दरदी विशेषताए दर्शाते हैं, और कुछ भारतीय-आर्य भाषाओं; जैसे, पंजाबी, हिन्दी आदि की विशेषताओं को प्रकट करते हैं। इस प्रश्न पर चटर्जी (१९६३) का मत है कि, "कश्मीरी मूलत: आर्य अथवा भारतीय ईरानी के दरद वर्ग से व्युत्पन्न है .... कश्मीरी भाषा, दरद मूल के साथ, भारतीय-आर्य तत्वों के अत्यधिक सम्मिश्रण का परिणाम है। इस प्रश्न पर, स्पष्टत: कोई ऐसी व्यापक खोज अभी तक नहीं हुई है, जिससे इस प्रकार के "सम्मिश्रण" का कोई भाषा-शास्त्रीय प्रमाण मिलता (काचरू, १९६९)। जनगणना रिपोर्ट (१९११) में कश्मीरी को शीना-खोवार वर्ग में पुन: वर्गीकृत किया गया, परन्तु इस स्थानीय आग्रह के आधार पर कि "यह अनिवार्यत: संस्कृत-व्युत्पन्न भाषा है", रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया कि "यह आग्रह सभवता पुर्नबिचार योग्य हो।" कश्मीरी के "संस्कृत-व्युत्पन्न" के इस "पुर्नविचार" के विरोध में ही ग्रियर्सन (१९१५) ने इस भाषा से सम्बद्ध सविस्तार विवरण[5] प्रस्तुत किया ताकि इस समस्या का हल भावुकता से नहीं वरन् वैज्ञानिक

आधारों पर हो जाए। सभव है कि कश्मीरी भाषा के प्ररूपवैज्ञानिक अध्ययन तथा, इस भाषा के भारतीय-आर्य तथा अन्य दरद भाषाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन द्वारा इस की उत्पत्ति पर अधिक प्रकाश पड़े, और इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर भी मिले।

२. कश्मीरी की उपबोलियों पर, किसी प्रामाणिक, गम्भीर, एव उपादेय अनुसंधान की अनुपस्थिति में, ग्रियर्सन का प्रारम्भिक विवेचन, अब भी उपबोली-वर्गीकरण का आधार बना हुआ है।[6] काचरू कश्मीरी के उपभाषा-वर्गीकरण को दो मुख्य भागो में बाँटते हैं। (१) "क्षेत्र निर्दिष्ट"[7] उपभाषा तथा (२) "प्रयोक्ताओं" की उपभाषा। जहां तक "प्रयोक्ताओं" की उपभाषाओं का संबंध है यह अन्तर हिंदु-कश्मीरी (हि० क०) तथा मुसलमान-कश्मीरी (मु० क०) में साफ दृष्टव्य है। यह अंतर युगोस्लाविया की "सरबियन" तथा "क्रोएशन" भाषाओं की भांति पूर्णत: धर्म पर आधारित है। "सभवत: बिना किसी संरचनात्मक औचित्य के", समकालीन कश्मीरी साहित्य में भी इस अतर को निबाहा जा रहा है।[8] धर्म पर आधारित यह भाषागत अंतर कई तरह के हैं: (१) उच्चारण परिवर्तन (स्वर): मध्य स्वर→अग्र स्वर [जैसे; (हि० क०) "रुख" लकीर (मु० क०) "रिख"]। उच्च मध्य स्वर→पश्य स्वर [जैसे; (हि० क०) 'मांज" माँ (मु० क०) "मोज"]। (व्यंजन): व→फ [जैसे; (हि० क०) 'होवुर" ससुराल (मु० क०) "होफुर"]। (२) इसी प्रकार, श्रीनगर और इसके आसपास बोली जाने वाली मु० क० में [र] का [र्] से तथा [इ] का [यि] से स्थानापन्न हो जाता है।[9] (३) शाब्दिक परिवर्तन: शाब्दिक परिवर्तन, शब्दों के स्रोतों पर निर्भर होता है। हि० क० के शब्द भण्डार का मुख्य स्रोत सस्कृत (तथा हिंदी-उर्दू एवं अन्य भारतीय भाषाएं) हैं, और इसी प्रकार मु० क० का फारसी तथा अरबी। उदाहरणार्थ; हि० क०; "बगवान" भगवान, "सॅरुग" स्वर्ग 'क्रूद" क्रोध, 'सॅरुग" धर्म; मु० क०; "खँदा", "जनत", "ग'सु", 'सवाब"। इसके अतिरिक्त कुछ शब्दरूपात्मक परिवर्तन भी मिलते हैं।[10]

३. कश्मीरी के स्वनिम व्यंजन इस प्रकार हैं: प, फ, ब; त, थ, द; ट, ठ, ड; क, ख, ग,/। स्पर्श संघर्षी:/च़, छ़; च, छ, ज/। अनुनासिक:/म, न/। संघर्षी:/स, ज, श, ह /। पार्श्विक:/ल/। कंपन:/र/। बिसर्प:/व,य/।[11] कश्मीरी के स्वर स्वनिम इस प्रकार हैं: दो उच्च : अग्र एवं पश्च स्वर :/इ/तथा/उ/। दो मध्य : एव मध्य पश्य स्वर:/ ए/तथा/अ'/। एक निम्न मध्य-पश्च स्वर:/ॲ/। तीन मध्य : उच्च, मध्य तथा निम्न :/उ़/,/अ' तथा/अ/।[12]

३. १. कश्मीरी स्वन प्रक्रिया सम्बधी कुछ प्रारम्भिक कार्यों[13] में, तथाकथित "मात्रा" स्वरों के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। इन को कुछ 'रहस्यात्मक"

इकाइयों के रूप में प्रस्तुत किया गया है (काचरू, १९६९)। बेयली (१९३६) के अनुसार "इन में कुछ तो ग़ैर-कश्मीरी कानों के लिए अश्रव्य हैं।" बेयली के इस मत पर टिप्पणी करते हुए काचरू (१९६९) लिखते हैं; "यह हमें संगीत की उन ऊंची स्वर-लहरियों की याद दिलाता है, जिनके विषय में वैज्ञानिकों का विचार है कि बिल्ली के कान तो उनको सुन सकते हैं, परन्तु आदमी के कान नहीं।" 'मात्रा' स्वरों के "सिद्धांत" में कोई भी महत्त्वपूर्ण बात दिखाई नहीं देती। आवश्यकता इस बात की है कि इसके स्वन प्रक्रिया तथा व्याकरण सम्बन्धी महत्व पर अधिक खोज की जाए।

३. २. कश्मीरी में एक अक्षर की सरचना निम्न प्रकार की हो सकती है: स्वर; व्यंजन + स्वर; व्यजन + व्यजन + स्वर; स्वर + व्यंजन; व्यजन + स्वर + व्यंजन; स्वर + व्यंजन + व्यंजन; व्यंजन + स्वर + व्यंजन + व्यजन; व्यंजन + व्यंजन + स्वर + व्यंजन + व्यंजन :/आ/,/हु/ /त्रे/,/असं/,/ग'ब/,/द्रोत/,/अम्ब/ /फम्ब/,/त्र'म्ब/:[हां, वह (व्यक्ति), तीन, (तुम) हंसो, भारी, द्राग्नित, आम, रूई, तुम (टीका लगवाव)]।

३. ३. कश्मीरी एक अक्षराश्रित भाषा है। अत: बलाघात का अंग्रेजी जैसी बलाघातमिश्रित भाषा में जो महत्व है, वैसा इसमें नहीं। बलाघात का कश्मीरी में यदि कोई महत्त्व है भी, तो वह मात्र एक अवधारण चिन्हक का है।[14]

३ ४. कश्मीरी भाषा की कुछ शब्दरूपात्मक तथा वाक्य विन्यास सम्बंधी विशेषताएं इसे भारतीय-आर्य भाषाओं से पृथक करती हैं। उदाहरणार्थ; कश्मीरी में सकेतवाचक सर्वनाम की तीन-पद प्रक्रिया है जैसे; /यि/यह /हु/वह (नजदीक),/सु/वह (दूर)। इन की विभक्ति लिंग, वचन, तथा कारक के अनुसार होती है। कश्मीरी वाक्य विन्यास पर कोई गम्भीर अनुसधान नहीं हुआ है।[15] कश्मीरी की वाक्य विन्यास सम्बंधी विशेषता यह है कि बाह्य संरचना में यह भारतीय-आर्य भाषाओं, जैसे हिन्दी,से भिन्न है। हिन्दी के विपरीत, कश्मीरी में, कर्म से पहले क्रिया आती है। इस प्रकार का अन्तर निषेधात्मक तथा प्रश्नवाचक दोनों प्रकार के वाक्यों में मिलता है।[16]

४. कश्मीर की प्राचीन लिपि "शारदा" थी।[17] ऐसा लगता है कि कुछ ऐतिहासिक कारणों से यह लुप्त हुई। 'रोमन' तथा देवनागरी को भी कश्मीरी के लिए प्रयुक्त किया गया है।[18] परन्तु अब फारसी-अरबी लिपि को राज्य सरकार द्वारा मान्यता मिल गई है और इस का प्रयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है।[19]

५. कश्मीरी के भाषा शास्त्रीय एवं अन्य पक्षों की ओर विद्वानों का ध्यान

१९४७ के बाद ही आकर्षित होने लगा। कश्मीरी (तथा अन्य दरद भाषाएं) क्योंकि एक ऐसे क्षेत्र में बोली जाती हैं जो भौगोलिक रूप से कई राष्ट्रों का भाग है, अतः इस भाषा पर अनुसंधान, दक्षिण - एशियाई भाषा एवं साहित्य के अन्तर्गत कई राष्ट्रों में किया गया। रूस, अमेरिका तथा पाकिस्तान में इस भाषा से सम्बद्ध कुछ कार्य किया गया, अथवा किया जा रहा है। कश्मीरी से सम्बद्ध संगठित अनुसंधान के क्षेत्र में निम्न संस्थाएं उल्लेखनीय हैं। (१) ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, कश्मीर।[20] (२) इलिनाय् विश्वविद्यालय, अमेरिका (कश्मीरी भाषा योजना)।[21] भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर।[22] विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, पंजाब।[23]

६. कश्मीरी भाषा को उस क्षेत्र में भी, जहां यह मातृ-भाषा के रूप में बोली जाती है, वह स्थान अभी तक नहीं प्राप्त हो सका है, जो इसे मिलना चाहिए था। इस का प्रयोग न तो शैक्षणिक रूप में हो रहा है और न ही राज्य के प्रशासन में इस का चलन है। इसे शिक्षा का माध्यम भी नहीं बनाया गया है। सारे देश में कहीं भी कश्मीरी का कोई विभाग नहीं जहां, इस भाषा, इसके साहित्य तथा इससे सम्बद्ध अन्य विषयों पर अनुसंधान एवं प्रशिक्षण की सुविधाए उपलब्ध हों।

---0---

संकेत :

१. जम्मू-कश्मीर राज्य भारत का उत्तरतम् राज्य है. इसकी सीमाएं उत्तर में अफ़गानिस्तान, सोवियत रूस, तथा चीन के साथ मिलती हैं, पंजाब इसके दक्षिण में है, और तिब्बत इसके पूर्व में है। कश्मीरी भाषा कश्मीर के अतिरिक्त पश्चिमी पाकिस्तान के एक छोटे से भाग में भी बोली जाती है, परन्तु पाकिस्तान में इस भाषा के बोलने वालों की संख्या उपलब्ध नहीं है। अतः कश्मीरी बोलने वालों की कुल संख्या सन्दिग्ध है। कुछ सूत्रों के अनुसार यह १.९५९,११५ है और कुछ के अनुसार १ १९५,९०२। (देखिये, भारतीय जन-गणना रिपोर्ट १९११,१९६१)।

प्रस्तुत लेख में कश्मीरी की कुछ विशेष ध्वनियों को परिवर्धित देवनागरी में इस प्रकार लिपियान्तरित किया गया है : [अ=/ə/], [आ॰=/əː/], [ए़ =/e/] [अ'=/ॱ/], [अॆ=/ɔ/], [ऑ=/ɔː/]; [च़=/+s/], [छ़=/+sh/]।

२. हिन्दी-उर्दू एव अन्य भारतीय भाषाओं में "कश्मीरी" अथवा "काश्मीरी" का प्रयोग भी किया जाता है। अंग्रेजी में "कश्मीरी" का लिपियान्तर अनेक तरह के अक्षरों द्वारा हुआ है। उदाहरणार्थ : *[cashmiri] [cashmeree]* आदि। (देखिए, ग्रियर्सन, १६१६)।

३. यह शब्द पुराणों के अतिरिक्त कल्हण की "राजतरङ्गिणी" में भी मिलता है। संस्कृत में "दरद" शब्द का अर्थ है "पर्वत"। क्योंकि लगभग सारा "दरदिस्तान" ('दरद' देश) पार्वतीय है (देखिए; ग्रियर्सन, १६१६) अतः संभव है कि इसी लिए इस का प्रयोग किया गया हो। इसके अतिरिक्त समग्र दरद भाषाओं के लिए "पिशाच" शब्द का प्रयोग भी कुछ प्रारम्भिक संस्कृत ग्रंथों में हुआ है।

४. (अ) काफ़िर वर्ग : (१) बाशगली (कति); (२) बाइ-अला; (३) वसींवेरी (वेरोन); (४) अशकुन्द; (५) कलाशा-पाशा; (६) गोंवारबति (नरसाती); (७) पशाई (लगमानी-देहगानी); (८) बाशकारिक; (९) तिराही; (१०) प्रमुन; (११) गुजरी; (१) वायगली; (१३) जोन्जगली।

(आ) खोवार वर्ग : (१) चित्राली, (२) छतरारी, (३) अरनिया।

(इ) दरद वर्ग : (१) शिना, (२) कश्मीरी (काँशुर), (३) कोहिस्तानी (देखिए ग्रियर्सन, १६१६) तथा काचरू १९६७)।

५. .... कश्मीरी भाषा में वे सभी लक्षण मिलते हैं जो पिशाच भाषाओं में विशेष हैं; और वे सभी विशेषताएं, भी मिली हैं, जो पिशाच तथा ईरानी भाषाओं में समान हैं।" (ग्रियर्सन, १६१५) जो विशेष लक्षण कश्मीरी को भारतीय-आर्य भाषाओं से पृथक करते हैं, उन सब का सविस्तार वर्णन भाषा सर्वेक्षण में किया गया है। कश्मीरी में संस्कृत के बहुत शब्द मिलते हैं, जिसमे यह धारणा बनी हुई है कि यह संस्कृत-प्रसूत भाषा है। परन्तु "यदि भाषाओं का वर्गीकरण केवल शब्दों के आधार पर ही किया जाता तो इस तरह की धारणा का विरोध करना कठिन हो जात" और "यह तो सर्वमान्य है कि भाषा-शास्त्रीय वर्गीकरण के लिए केवल शब्दों को आधार नहीं माना जा सकता।" (ग्रियर्सन, १६१५)। अन्ततः ग्रियर्सन (१६१५) इस परिणाम पर पहुँच जाते हैं कि कश्मीरी एक मिली जुली भाषा है, जिसका आधार पिशाच परिवार की शीना की समवर्गी कोई भाषा है।"

६. ग्रियर्सन (१६१९) के मतानुसार "कश्मीरी की केवल एक वास्तविक उपबोली है, और वह है "किश्तवारी" (पृ० २३३)। भारतीय जनगणना रिपोर्ट के

अनुसार कश्मीरी की निम्न "क्षेत्रीय" उपबोलियां हैं : बुंजवाली (५५०), किश्तवारी (१.१६३३), पगूली (६,५०८), शिराज़ी-कश्मीरी (६,६७८), कंगहनी (१५३), कोहिस्तानी (८१)।

७. "क्षेत्रीय" उपभाषाओं के संदर्भ में काचरू (१९६९) ग्रियर्सन का अनुसरण करते हैं। वे केवल "उपभाषा सम्बंधी अधिक अनुसंधान" का सुझाव देते हैं ताकि 'यह प्रमाणित हो सके कि किश्तवारी ही कश्मीरी की एक वास्तविक उपबोली है।"

८. स्वनिम प्रक्रियात्मक स्तर पर, इस प्रकार के वैभिन्य, जो बोलने वाले वर्ग के धर्म पर अवलंबित है, को कुछ स्वनिमों की आवृत्ति एव वितरण के रूप में समझाया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य भिन्नताए शाब्दिक एवं शब्दरूपात्मक हो सकती हैं। हि० क० ने संस्कृत से और मु० क० ने फारसी-अरबी से शब्द ग्रहण किए हैं। (देखिऐ काचरू, १९६९)।

९. हण्डू, १९७० तथा काचरू, १९६९।

१०. ये दो प्रकार के हैं। एक वे जिनके स्रोत ही भिन्न हैं। जैसे, फ़ारसी अरबी के कुछ रूपिम मु० क० में और संस्कृत के हि० क० में अधिक पाये जाते हैं। दूसरे वे जो किसी रूपिम की उपस्थिति एक वर्ग को भाषा में दर्शाते हैं, जबकि दूसरे वर्ग की भाषा में उसका अस्तित्व उभर रहा है, (या उभर चुका है)। उदाहरणार्थ; "हरगाह" यदि, "यवु" कल (गुज़रा हुआ) का हि० क० में अब कोई अस्तित्व नहीं रहा है।

११. अन्य भारतीय - आर्य भाषाओं के विपरीत, कश्मीरी भाषा में सघोष महाप्राण नहीं हैं (देखिए, काचरू, १९६९)। सभी व्यंजन (तालव्य स्पर्श संघर्षी / च /, / ज /; तालव्य संघर्षी / श /; तालव्य विसर्ग / य / को छोड़ कर) ताल व्यरंजित हो सकने हैं। / फ / तथा / फ़ / मध्य स्थान में स्वतन्त्र रूप से परिवर्तनीय हैं। अतिम स्थान में सघोष एवं अघोष स्वनिमों का वैषम्य स्पष्ट नहीं है। स्वनिक स्तर पर कश्मीरी में [/म/, /न/, /नय्/] तीन तरह के अनुनासिक हैं, परन्तु स्वन-प्रक्रिया के स्तर पर मात्र दो [/म/, /न/] रह जाते हैं। /ण/; /न/ का पश्च स्पर्शों से पूर्व, एक उपस्वन बन जाता है। (देखिए, काचरू, १९६९, तथा हण्डू, १९७०)।

१२. कश्मीरी के सभी स्वर दीर्घीकृत हो जाते हैं। सभी दीर्घ स्वर अनुनासिक हैं और ह्रस्व स्वरों में केवल / ए़ /, / अ' / / अं / अनुनासिक हैं। यहां यह कहना भी आवश्यक है कि / इ / तथा / ई / का (विशेषकर मु० क० में) / यि /

तथा / यी / से अग्रस्थान पर स्वतंत्र रूप से स्थानापन्न हो सकता है । यदि किसी स्वर के साथ / य / विसर्प आए तो परिणाम सध्यक्षरीकरण हो जाता है । / ए़ / का उपस्वन [ऐ] है । प्रत्येक दीर्घ स्वर के पश्चात्, कश्मीरी में हक विसर्प आ जाता है । (देखिए, काचरू, १९६९, ग्रियर्सन, १९१९, हण्डू, १९७०) ।

१३. उदाहरणार्थ बेयली छः प्रकार के "मात्रा" स्वरों का उल्लेख क ते हैं जो निम्न स्वरों के बराबर है : / अ /, / ए़ / , / इ /, / अ' / , / उ / तथा / अं / । मोरगस्त्रीन (१९४१) ने भी इस मात्रा स्वर सिद्धान्त का एक ऐतिहासिक स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया है । कश्मीरी में अंतिम स्थान में एक व्यंजन + व्यंजन गुच्छ में अनिवार्यत: एक विसर्प लग जाता है । लगता है कि इसी विसर्प को कई लोगों ने "मात्रा स्वर" का नाम दिया है । (काचरू, १९६९) ।

१ . (देखिए काचरू, १९६९, हण्डू १९७०) ।

१५. भाषा सर्वेक्षण में कश्मीरी वाक्यविन्यास के विषय में केवल एक पंक्ति लिखकर काम चलाया गया है । (देखिए, ग्रियर्सन, १९१९) ।

१६. उदाहरणार्थं : "राम ने दूध पिया"; "रामन चव दॅद"; "रामने" "पिया" "दूध" (राम ने दूध पिया) । यह विशेषता निषेधात्मक एवं प्रश्नवाचक वाक्यों में भी मिलती है; जैसे "रामन चवु़ दॅद" अथवा "क्या रामन चवु़ दॅद" । काचरू (१९६९, १९६७) ने पहली बार कश्मीरी वाक्य विन्यास पर कार्य किया ।

१७. शारदा लिपि का देवनागरी तथा गुरुमुखी के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है । इसका नाम कश्मीर घाटी के पुरातन नाम [शारदापीठम्] पर आधारित है । यह लिपि अब लुप्त हो चुकी है । केवल कश्मीरी पुरोहितों का वृद्ध वर्ग ही इसका प्रयोग जन्म-पत्रियों आदि के लिए करता है । (देखिए, हण्डू, १९७०] ।

१८. कश्मीरी हिन्दू देवनागरी के साथ साथ अन्य लिपियों का प्रयोग भी करते हैं । कश्मीरी के कई ग्रन्थ मात्र देवनागरी में ही उपलब्ध हैं । 'रोमन' हिन्दी को भी कश्मीरी के लिए स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त किया गया है । विदेशियों द्वारा कश्मीरी भाषा और साहित्य पर किया गया सारा कार्य इसी लिपि में उपलब्ध है ।

१९. कई ऐतिहासिक कारणों से फारसी - अरबी लिपि कश्मीरी के लिए अपनाई गई । परन्तु यह सभी दृष्टियों से अवैज्ञानिक एव अपूर्ण है ।

२०. अकादमी ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के प्रकाशन में सहयोग दिखाने के

अतिरिक्त, एक शब्द कोश योजना भी बनाई है; जिसको दो या तीन भागों में पूर्ण किया जा रहा है।

२१. इलिनाय् विश्वविद्यालय के भाषा विभाग में कश्मीरी से सम्बद्ध एक योजना आरम्भ हुई है, इस योजना के सूत्रधार ब्रज काचरू हैं। अभी तक इस योजना के अन्तर्गत शैक्षिक महत्त्व के दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। (१) ए रेफरेन्स ग्रैमर ऑव कश्मीरी। (२) "ए ग्रैमेटिकल सिकेच ऑव कश्मीरी।"

२२. भारत में पहली बार, भारतीय भाषा संस्थान ने, १९७० में, उत्तरीय क्षेत्रीय भाषा केन्द्र (पटियाला) में कश्मीरी भाषा को पढ़ाने का श्रेय प्राप्त किया। फलस्वरूप कुछ महत्त्वपूर्ण शैक्षिक सामग्री भी प्रकाश में आई।

२३. विश्वेश्वरा नन्द वैदिक संस्थान (पंजाब) उत्तर-पश्चिमी भाषाओं का एक शब्दकोश तैयार कर रहा है। कहा जाता है कि इसमें कश्मीरी की छ: उपबोलियां सम्मिलित हैं। (देखिए, संस्थान की वार्षिक रिपोर्ट, १९६९, १९७०)।



हरसिंगार झरे भिनसारे

★ कु० उषा व्यास 'छवि'

शीश महलों में तुहिन के
नृत्य करती चांदनी के
हो गये हैं मूक नूपुर
तारिकायें सो रही हैं गोद में रख एकतारे
हर सिंगार झरे भिनसारे

बादलों की खींच चादर
ताल में सोये कमलदल
छेड़ता फिरता है मलयज
टटकी कचनारी कली को चूम कर खिल जा पुकारे
हर सिंगार झरे भिनसारे

अमलतासी स्वर अधर पर
धर प्रभाती गाए निर्झर
नीड़ में पंखों की फड़-फड़
लो उनींदी शर्वरी ने पलक रतनारे उघारे
हर सिंगार झरे भिनसारे ।।



दो भिन्न मूड़ों के
दो गीत

★ पृथ्वीनाथ मधुप

(१)

शोले हुए चिनार ।
ऊंचे हैं
फैले हैं
देख रहे
लाखों आँखें बन
क्या होता हरबार :
शोले हुए चिनार ।

आग लगेगी
धू - धू धधकेगी
हर कर्म अवांछित
सूखे तिनकों, पातों सा होगा
लपटों से दोचार :
शोले हुए चिनार ।



(२)

पत्ते चिनार के--
        एक एक झर गये
हो गई
एक ही
डालियाँ और मन
क्षण हुए सर्प - फण।
मर गई उड़ान—
        परिन्दों के पर गये।
धूप
मृत्यु - सेज पर
शोकरत यह गगन
पवन बाँटता घुटन
धूम तिक्त फैलता--
        बो रहा जहर नये।
पत्ते चिनार के--
        एक एक झर गये।



कीमती चीज़

✪ अवतार कृष्ण राज़दान

वह तो प्राय: प्रतिदिन अपने कमरे की खिड़की के बाहर देखता। वहां से एक काली-पथरीली सड़क साफ दिखाई देती थी, जिस पर बारह घटे लोगों का आना-जाना होता। वह उन्हें बड़ी दिलचस्पी से देखता, खासकर उनकी टांगों की हरकत को देखकर वह मचल जाता। दूर से देखने पर वह किसी के चलने का अंदाज़ बता सकता। हर आदमी की अलग-अलग चाल होती — किसी की लयभरी और किसी की लड़खड़ाती। कोई अपनी चाल में संयम दिखाता, कोई बेचैनी और बेढंगापन। वह यह सब बिना किसी उकताहट के देखता जैसे कोई ड्रामा देखता हो। कभी-कभी वह सोचता 'यह लोग मेरी ओर क्यों नहीं देखते जबकि मुझे इन्हें देखने में दिलचस्पी है। सब अपने-अपने ख्यालों में डूबे हुए हैं।' अगर कोई उसकी ओर देखता भी, तो सरसरी नज़र से ही। इस से वह अकेलापन महसूस करता। फिर भी वह प्रतिदिन प्रात: से संध्या तक खिड़की के बाहर देखता रहता क्योंकि इससे उसका समय आसानी से कट जाता।

एक दिन उसने इन लोगों में से एक को बिल्कुल अपनी खिड़की के करीब खड़ा पाया। वह सफेद सलवार तथा नीला कुर्ता पहने थी। रेशमी दुपट्टे का आंचल उसके चेहरे पर ऐसे पड़ा हुआ था जैसे चन्द्रमा के आगे छोटी सी बदली। बालों की लटें मुंह पर बल खा रही थीं। उम्र से सतूह-अठारह वर्ष की लग रही थी। उसने धीरे-धीरे अपना बच्चों का सा मुंह उठाया और उसकी तरफ एकटक देखने लगी। फिर वह मुस्करायी और दायें हाथ से उसको कुछ इशारा किया। उसको लड़की की यह हरकत अजीब सी लगी। उसने सोचा कि आखिर कैसी लड़की है यह? क्या यह सच-

मुच मुझे देख रही है या किसी की प्रतीक्षा कर रही है ? नहीं तो, यह यों ही सामने देख रही है । उसकी आँखें बड़ी-बड़ी हैं । इन आंखों से वह आखिर क्या देख रही है ? हाय, वह तो मुझे देख रही है । हां, मुझे ही !

उसने अपना मुख मोड़कर कमरे की तरफ देखा । उसने सोचा कि लड़की अब वहां से हट जायेगी । लेकिन ज्योंही उसने सड़क की तरफ देखा, लड़की को उसी तरह अपनी जगह पर खड़ा पाया । अबकी बार वह किसी दूसरी लड़की के साथ बातें कर रही था और उसको आंखों ही आंखों में उसे दिखा रही थी । यह देखकर उसके शरीर में सिहरन सी उत्पन्न हुई । उसने आंखें बन्द कर लीं और खिड़की में से हट जाना चाहा, लेकिन हट न सका ।

कुछ देर बाद लड़की लोगों की भीड़ में खो गई । उसकी चालमें मस्तीपूर्ण संयम था जो उसके चेहरे से भी झलकता था ।

आज जिन्दनी में पहली बार उसके साथ यह घटना घटी थी वह बहुत खुश था । उसने सोचा कि अब इस खिड़की के बाहर देखने में अच्छी तरह समय कट जायेगा । अगर निकट से कोई साथी न बन सका, तो दूर से ही सही । दूर के ढोल सुहावने होते हैं । रात को वह सो गया तो कई सुन्दर सपने देखे । एक सपने में वह सड़क पर लड़की के साथ कदम से कदम मिलाता हुआ चलता है और सड़क खत्म होने में ही नहीं आ रही है ।

अगले दिन लड़की फिर उसी सडक से गुजरी । उसने खिड़की की तरफ देखा जहां से वह देख रहा था । कल की तरह वह घबराया । उसने बाहर ऐसे देखा जैसे यों ही देख रहा हो । उसने चाहा कि वह वहां से चली जाये । वह क्यों मुझे नाहक परेशान करती है? क्या यह संभव है कि वह भी मेरी ही तरह किसी मधुर कल्पना में खोई हुई हो? वह इन्हीं बातों पर काफी देर तक सोचता रहा । उसके अन्दर हलचल सी मच गई । दिल की धड़कन तेज़ होने लगी । माथे पर पसीने की मोटी-मोटी बूंदे झलकने लगीं । उसने धीमी-धीमी सांसों में उलझी हुई आवाज में अपने-आपसे कहा—'क्या यह सपना है या वास्तविकता ? लगता है कि यह आरज़ू के कई वर्षों की चाहत है ।'

लड़की के साथ उसकी ऐसी मुलाकात अब लगभग प्रतिदिन होने लगी थी यद्यपि उसके मां-बाप को भी इस बात का पता चल गया था फिर भी उन्होंने उसको खिड़की के बाहर देखने से न रोका । वे जानते थे कि इससे लड़की का कुछ बिगड़ नहीं सकता दरअसल यह बात सच थी । वह रोज लड़की को खिड़की के बाहर देखता । लड़की छुप-छुप कर उसके साथ नजरें मिलाती, इशारों में बाहर आने को कहती, फिर मुस्कराती

ग्रौर जब तक वह ग्रांखों से ग्रोझल न हो जाती, उसकी ग्रोर देखती रहती। उसकी ग्रांखों में कभी उदासी होती कभी खुशी। मगर उसको इससे कोई मतलब नहीं थी। उसको सिर्फ लड़की को देखने से ही तसल्ली मिल जाती। उसके लिए वह रोज खिड़की पर खड़ा प्रतीक्षा करता था।

इसी प्रकार दिन बीतते गये। ग्रब वह रोज इसलिए लड़की की प्रतीक्षा करता कि 'ग्राज कोई-न-कोई नयी बात ज़रूर होगी'। 'क्या ग्राज वह कोई नया' कदम उठाएगी? फिर वह ग्रपने ग्रापसे पूछता कि कौनसा नया कदम उठायेगी वह बेचारी? कदम तो उसको उठाना चाहिए, लड़की को नहीं। कदम के बारे में सोचकर ही उसने एक ग्राह भरी। एकाएक उसकी नज़र ग्रपनी टांगों पर पड़ी। टेढ़ी-मेढ़ी टांगें थीं उसकी। चलना तो एक तरफ. यह उसका बोझ भी नहीं उठा सकती थीं, टांगों की बदौलत ही उसके दिन घर की चार दिवारी में बीत जाते। उसकी दशा उस पखहीन पक्षी की तरह थी जिसको पिंजरे के कोने में ही सुख प्राप्त होता है।

वह जन्म से ही घर की चार दीवारी में घिरा हुग्रा था। मां-बाप ने कई हजार रुपये उसके इलाज पर खर्च किये लेकिन सब बेसूद। उसके स्वस्थ होने की कोई ग्राशा नहीं लगती थी। उसकी जिन्दगी घर की चरो दीवारी में ही गुजरती थी। हां, महीने में दो-एक बार बाहर बाजार तक जाता था, पहियों वाली कुर्सी पर। रोज़ बाहर जाने का साहस नहीं करता। ग्रपनी हालत को देखकर उसकी ग्रांखें ग्रभी-कभी भर ग्रातीं। उसकी दुनिया सीमित थी ग्रौर उसमें वह घुटन सी महसूस करता। कभी-कभी दिल चाहता कि उसी घुटन में मर जाए ग्रौर क्योंकि घुटे हुए ग्ररमानों के कारण उसका जीना बोझिल सा बन गया था।

काश, मैं भी कदम उठा सकता! उसने मन में सोचा। कदम का खयाल ग्राते ही उसको वह लड़की भी याद ग्रायी। कैसी छमाछम करती हुई चलती है? उसकी चाल ही निराली है। लम्बे-लम्बे डग भरती हुई, ग्रदा से वह इस सड़क को पार करती है। सड़क का हजूम उसके पीछे-पीछे चला जाता है ग्रौर मैं बुत बना यह सब देखता रह जाता हूँ. सिर्फ इसलिए कि मेरी टांगें चलने योग्य नहीं। मैं ग्रपाहिज ही सही, मगर मेरी सोचें भी ठहरी हुई हैं। क्या पता मेरी मंजिल बहुत करीब हो, बिल्कुल करीब। ग्रौर ग्रगर मेरा भाग्य इसी लड़की के मिलाप के साथ लिखा हो तो इसमें मेरा क्या दोष? काश, ऐसा भी मुमकिन होता! लेकिन इसके लिए पहल भी मुझे करनी चाहिए। कुछ भी हो, मुझे उससे मिलना चाहिए जरूर मिलना चाहिए, इस मिलन के लिए ग्राज मेरा बोझ मेरी टांगों को उठाना ही होगा।

उसने ग्रपना सिर ऊंचा किया ग्रौर बड़ी मुश्किल से भुजाग्रों के सहारे ग्रपना

बोझ टांगों पर डाला। फिर इन्हें हरकत में लाने को कोशिश की। वह उठना चाहता था, अपनी टांगों पर, मगर इनमें वह शक्ति कहां थी कि उसका बोझ उठा सकें। फिर भी वह नहीं माना क्योंकि आज उसने कुछ-न-कुछ कर गुजरने की कसम खायी थी। उसने अपने दायें हाथ से खिड़की को पकड़ा और अपनी पूरी ताकत लगाकर ज्यों ही वह ऊपर उठने वाला था कि तड़ाख . . . . . . वह फर्श पर गिर पड़ा। उसके शरीर में थरथराहट सी पैदा हो गयी। उसको अपने इस पागलपन पर हंसी भी आयी और रोना भी। वह सभी की ओर देखता रहा—एक अपराधी की तरह, क्योंकि उसने ऊपर उठने की असफल कोशिश की थी। उसके माथे पर चोट भी लगी थी। चोट मामूली थी लेकिन उसने सोचा कि यह चोट नहीं, भूकंप का एक शक्तिशाली झटका था जिस से उसके खयालों का भव्य भवन तहस-नहस हो गया है। माथे पर लगी यह चोट ठीक हो सकती थी, लेकिन खयालों का यह मनभावन महल, जिसकी हर एक दीवार अरमानों से सजी थी, क्या फिर बन सकता था? मां-बाप की जब उसके माथे पर नज़र पड़ी, तो वे बहुत घबराये। उन्होंने उसको हस्पताल ले जाना ही मुनासिब समझा।

उसको वे पहियों वाली कुर्सी पर बिठा कर हस्पताल ले गये। रास्ते में वह किसी की ओर नहीं देखता था। उसकी नज़रें सीधी थीं। वह कुछ सोच रहा था कि अचानक दूर से उसको वह लड़की आती हुई दिखाई दी। वही मस्तानापन, वही मतवाले नयन। उसने उसकी तरफ सहमी आंखों से देखा। दिल की धड़कन तेज होने लगी। गाल सुर्ख होने लगे। उसने सिर झुकाया और टांगों पर पड़े फटे-पुराने शाल को ठीक कर लिया। लड़की हौले-हौले सरगोशियों में दूसरी लड़कियों के साथ बातें करती हुई उसकी ओर कदम बढ़ा रही थी। वह उसके निकट पहुँचने ही वाली थी।

उसने अपनी टांगों पर पड़े शाल को फिर से ठीक किया और इन्हें उसमें पूरी तरह छिपाने की कोशिश की। उसको इस बात का डर था कि कहीं लड़की इनको देख न ले। एक बार, दो बार, तीन बार, उसने ऐसा ही किया। यह देखकर उसके बाप की समझ में कुछ नहीं आया। उन्होंने उसको यह कहकर डांटा कि 'क्यों बार-बार शाल को इस प्रकार सहेजने में लगे हो। दस साल पुराना यह शाल . . . गिरने दो गिरता है तो . . . और फिर यह बहुत कीमती भी तो नहीं है।'

हर आदमी की नज़र में हर चीज़ की कीमत अलग होती है। वह मन ही मन बुदबुदाया—यह पुराना शाल मेरे लिए कितना कीमती है, इन लोगों को क्या मालूम? जिस राज़ को छुपाने की ताकत सिर्फ इस शालमें है, मेरे लिए वह राज़ कितना कीमती है। और इसीलिए कितना मूल्यवान है यह शाल . . .।

इन बेजान टांगों के अपंग संसार में कुछ क्षणों के लिए जो मधुरता आ जाती है, वह खत्म हो जायेगी। फिर वह कभी खिड़की के सामने खड़ी नहीं होगी : . . कभी नहीं।

उसने शाल को टांगों के चारों ओर अच्छी तरह लपेट लिया। अस्पताल की दीवार पर बना लाल क्रास दूर से ही दिखाई देने लगा था। चारों ओर से घूमती हुई उस की निगाहें एक बार फिर जाकर लड़की पर स्थिर हो गईं। वह जानना चाहता था कि आखिर लड़की कहां जाती है? दायें या बायें। अचानक लड़की बड़ी तेजी से चलने लगी और अपनी दूसरी सहेलियों से कटकर चुपचाप उसके सामने नज़रें झुकाये बुत की तरह खड़ी हो गयी।

उसी क्षण उसकी आंखों से उबलते हुए आंसू फूट पड़े। यह आंसू नहीं, जीवित शब्द थे—बेबसी के। और लड़की यह सब सिर झुकाये देख रही थी। उसको आगे चलना ही नहीं आता था मानो वह कदम उठाना ही भूल गई हो। उस समय ऐसा लगता था कि लड़की अपाहिज है और वह सड़क पर चहलकदमी कर रहा है।



स्टिल लाइफ

★ हरिकृष्ण कौल

लाल मेजपोश, काला फूलदान है
फूल कहां हैं ?
तश्तरी में आम हैं या गुठलियां,
किस को पहचान है ?
खुली पड़ी मोटी पुस्तक से
शब्द सारे धुल गये हैं ।
राखदानी पर सोई सिगरेट
सोते सोते राख हुई है ।

लाल मेजपोश पर काले फूलदान के पास
एक सोन-मछली भी है ।
मछली मर गई है,
किन्तु उसकी तड़प –
फूलदान के अस्तित्व और फूलों के अस्तित्व में,
आम और गुठलियों के सशय में
मोटी पुस्तक के अनुपस्थित शब्दों में
राख हुई सिगरेट में,
राखदानी में
यहां वहां,
हर कहीं
व्याप्त है !!



नागमती वियोग (एक अन्तर्दर्शन)

★ डॉ शोभनाथ सिंह

जायसी का पदमावत हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि है और उसका नागमती वियोग एक जगमगाता हुआ रत्न है। यह एक आध्यात्मिक शृंगार-परक रचना है। शृंगार के क्षेत्र में वियोग वर्णन का महत्व अधिक होता है। संभोगावस्था की सुखद बेला मनुष्य के हृदय को उतना प्रभावित नहीं कर सकती है जितनी वियोगावस्था की दारुण स्थिति उसे अभिभूत करती है। सुखमय समय मनुष्य को जल्दी भूल जाता है दुखमय नहीं, बल्कि सुखद बेला में सुखद समय की स्मृति ही अधिक कष्ट देने वाली होती है। पदमावत की कथा में नागमती की यही दशा हुई है। उसके सुखमय दिनों को कोई नहीं जानता लेकिन उसकी विप्रलम्भ दशा को सारा हिन्दी संसार जानता है।

जायसी ने पदमावत के आरंभ में कहा है कि 'हौं पंडित केर पछलगा।' इस का तात्पर्य यह है कि कवि कोई नई बात नहीं कहने जा रहा है बल्कि प्राचीन कथा के आधार पर अपने ढंग से अपनी बात कहना चाहता है। संपूर्ण ग्रन्थ में हिन्दी साहित्य की परंपरित परंपराओं का ही पालन किया गया है। नागमती वियोग वर्णन प्राचीन काल से चली आती पिटी पिटाई लकीर पर ही हुआ है। संपूर्ण वर्णन में उपमानों का चयन परपरित रूढ़ियों से ही किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कवि ने पुराने चित्र पर ही केवल नया रंग चढ़ाया है। लोक कथाओं के आधार पर ऐतिहासिकता का पुट देकर मसनवी पद्धति द्वारा लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना करना जायसी का उद्देश्य रहा है। पदमावत के पात्रों की विरहोक्तियां कवि के व्यथित हृदय के उदगार हैं।

नागमती वियोग वर्णन पदमावत के कथानक के दो भागों को जोड़ने की महत्व-पूर्ण कड़ी का काम करता है। यदि यह अंश न होता तो ग्रंथ का आधा भाग समाप्त हो जाता। राजा रतनसेन अपनी पूर्वपत्नी नागमती को विस्मृत कर सिंहल द्वीप में पदमावती के साथ आनद लूट रहे हैं। जिस प्रेम की प्राप्ति के लिए उससे नाना प्रकार की साधनाए कराई गई वह अब उसे प्राप्त हो चुका है। वस्तुत: ग्रंथ का कथानक यहीं समाप्त हो जाना चाहिए परन्तु कवि को अपने प्रेम की पारलौकिकता के प्रदर्शन से अभी संतोष नहीं हुआ है। इसीलिए नागमती के वियोग वर्णन द्वारा रतनसेन को प्रभावित करके पुन: चित्तौड़गढ़ लाया गया है। यदि रतनसेन को चित्तौड़ न लाया जाता तो आध्यात्मिकता की व्यंजना उतनी उच्चकोटि की न हो पाती जितनी रानियों के सती होने पर हुई है। यहां अत में अलाउद्दीन को भी कहना पड़ा है कि 'पिरथिमी झूठी'।

नागमती वियोग वर्णन का आरंभ बारहमासे से किया गया है। विदेश गया हुआ रतनसेन जब अपनी पूर्वपत्नी नागमती की सुधि तक नहीं लेता है तो उसे स्वाभाविक विश्वास हो जाता है कि 'नागर कउनो नारी बस परा'। काल रूपी शुक ने नायिका के पति को उसी प्रकार छला है जिस प्रकार बलि को बामन ने तथा कृष्ण को अक्रूर ने छला था। उसकी स्थिति उस मादा पक्षी की तरह है जिसका नर साथी बहेलिये के तीर का शिकार हो चुका है। फिर भी उसे साहस है क्योंकि 'तपनमृगसिरा जे सहैं ते आदा पलुहन्त' का विश्वास उसके साथ है।

बारहमासे का आरंभ आषाढ़ मास से किया गया है। इसके दो कारण हैं। प्रथम यह कि रतनसेन का सिंहलद्वीप को प्रस्थान ज्येष्ठ मास में हुआ था। दूसरा यह कि वर्षा ऋतु वियोगिनी के लिए सदैव कष्टकारक होती रही है। ग्रीष्म ऋतु की तपा भानु किरणें जब पावस की रिमझिम से शीतल होती हैं तो स्वभावत: मनमयूर गुनगुनाने लगता है। ऐसी सुखद बेला में प्रिय का अनुपस्थित होना विशेष कष्टदायक होता है। प्राकृतिक विधान के अनुसार संयोगावस्था में मानवीय वृत्तियां अंतरमुखी होकर आनन्द विभोर रहती हैं परन्तु वियोगावस्था में बहिमुखी होकर दुगुना कष्ट देती हैं। संयोगावस्था की आनन्ददायी वस्तुएं वियोगावस्था की वेदना को बढ़ाने में विशेष सहायक इसी कारण हुआ करती हैं।

नागमती एक रानी है। विरह सम्राट प्रकृति की सारी सेना लेकर उसका हरण करना चाहता है। रानी की आंतरिक स्थिति भी अनुकूल नहीं है क्योंकि मनोज ने पहले से ही उसे घेर रखा है। ऐसी विकट परिस्थिति में वह अपना रानीपन भूल जाती है। उसे साधारण गृहिणी की भांति चिन्ता होती है कि 'हौं बिनुनाह मदिर को छावा।' इस पर कुछ विद्वानों का आक्षेप है कि साधारण व्यक्ति जायसी राज घराने के

राजसी ठाठ-बाट को क्या जाने ? नागमती के रानी स्वरूप के चित्रण में उन्हें सफलता इसी कारण नहीं मिल पाई है। यहां ध्यान रखने की आवश्यकता है कि प्रेम की पराकाष्ठा में रानी और रंकिनी में कोई अंतर नहीं रह जाता है। यह जायसी की सफलता है कि रानी पीड़ा का अनुभव रंकिनी की भांति कर रही है।

नागमती की प्रेमाभिव्यंजना सात्विक है तामसी नहीं। उसे अपने जीवन की चिन्ता है, भोग की नहीं। वह अपने पति का दर्शन चाहती है। स्पष्ट शब्दों में कहती है :— 'मोहि भोगसों काज न बारी। सौंह दीठिकर चाहन हारी।'
वह अपनी मर्यादा को बनाए रखती है। विद्यापति की नायिका की तरह भोग नहीं चाहती। वह भारतीय गृहिणी का आदर्श स्वरूप उपस्थित करती है।

नागमती वियोग वर्णन में ऊहात्मक पद्धति का सहारा अधिक लिया गया है परन्तु कवि ने हास्यास्पदस्थिति कहीं भी नहीं आने दी है। इसका कारण यह है कि असत्य आधार पर कवि की कल्पना बहुत ही कम हुई है। नागमती वियोग वर्णन में केवल एक उदाहरण कुछ इस प्रकार का मिलता है जो असत्य जान पड़ता है :—

जेहि पखी के नियर होई कहै, विरह की बात।
सोई पखी जाइ जर तरुवर होई निपात।

इस प्रकार के वर्णन फारसी के प्रभाव के कारण हुए हैं। पदमावत में ऐसे वर्णनों की मात्रा अत्यल्प है।

सत्य आधारभूत वस्तु के हेतु की कल्पना जायसी ने बहुत अधिक की है। ऐसे स्थानों पर इनका काव्य अत्यंत उच्च कोटि का हुआ है। जैसे :—

राते बिम्ब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूँ।।

बिम्बा फल स्वत: लाल होता है, परवर समय बीतने पर आप पकता है, गेहूँ का पेट प्रकृति से ही फटा रहता है लेकिन कवि को इन सभी कार्यों का कारण नागमती की वियोगावस्था ही जान पड़ती है। इस प्रकार की कल्पनाए जायसी ने अधिक की हैं।

भाव साम्य की योजना नागमति वियोग में बेजोड़ पाई जाती है। जैसे नायिका की व्यथित आत्मा की तुलना कवि ने भाड़ में भूने जा रहे दाने से की है :—

लागिउ जरै जरै जस भारू। फिर फिर भूंजेसि तजेउ न बारू।

जिस प्रकार दाना भुनते समय बालू के तप्त कणों से उछलकर भागना चाहता है लेकिन बाहर न जा पाने के कारण पुन: उसी प्रज्वलित रेत में छटपटा कर गिरता है ठीक यही हालत नागमती की बिह्वल आत्मा को है । उसके प्राण बाहर नहीं निकल पाते हैं केवल तप्त हृदय में छटपटाते रहते हैं ।

नागमती के वियोग वर्णन में कवि ने ग्रामीण जीवन का सुन्दर चित्रण किया है । गांव की प्रत्येक आवश्यक वस्तु पर कवि की दृष्टि गई है बारहमासे के प्राय: सभी उपमान गांव से ही लिए गए हैं । इस वर्णन में कवि ने क्रमश: आर्द्रा से स्वाति तक के ही नक्षत्रों को गिनाया है । शेष को छोड़ दिया है । इसका कारण केवल यही जान पड़ता है कि केवल इन्हीं नक्षत्रों की जानकारी साधारण कृषक वर्ग को रहती है और केवल इतने ही नक्षत्रों की किसानों के कृषि कार्य के लिए विशेष आवश्यकता भी रहती है । वर्षा ऋतु में खेती का सारा कार्य इन्हीं के आधार पर आज भी किसान करते हैं ।

जायसी गांव के निवासी थे । गाँव की सारी जानकारी इनको थी । इसी कारण पात्रों का स्वरूप ग्रामीण व्यक्तियों से मिलता जुलता चित्रित हुआ है । गांव की ऐसी वस्तुओं का वर्णन नागमती वियोग के अन्तर्गत मिलता है जिसे अच्छी तरह ग्रामीण व्यक्ति ही समझ सकता है । जैसे :—

बरसै मघा झकोरी झकोरी । मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी ।

मघा नक्षत्र की बरसात गांवों में प्रसिद्ध है । विरहिणी के आंसू मघा में मकानों की 'ओरी' से होड़ लगा रहे हैं । 'ओरी' गांव के कच्चे मकानों के उस छोर को कहते हैं जहां से खपरैल का पानी ज़मीन पर गिरता है । जहां छप्पर या खपरैल के मकान नहीं होंगे वहाँ ओरी नहीं होगी । महल निवासी 'ओरी' चूने की बात क्या समझेंगे । इसी प्रकार बैसाख महीने के वर्णन में कवि कहता है :—

बिहरत हिया करहु पिउ टेका । दीठि दवंगरा मेरवहु एका ।

गर्मी के दिनों में तालाबों के किनारे पानी सूख जाने के बाद वहां की मिट्टी फट जाती है । वर्षा हो जाने पर पुनः वे दरारें समाप्त हो जाती हैं । नायिका का हृदय वियोगाग्नि के कारण फटकर विदीर्ण हो चुका है । उसी विदीर्ण हृदय को पति की स्नेहवर्षा से आपूरित करने का आग्रह नायिका कर रही है । इस तथ्य को ग्रामीण व्यक्ति के अतिरिक्त कोई दूसरा भला कैसे समझ सकता है जबकि विदीर्ण भूमि उसने देखी ही नहीं है । वस्तुतः नागमती कृषक परिवार की मर्यादित महिला का आदर्श उपस्थित करती है ।

जायसी तानाशाही युग के मुसलमान कवि थे। उस युग के कवि का ध्यान ग्रामीण क्षेत्रों में जाना उसके हृदय की विशालता का परिचायक है। इस कवि को ग्रामीण जीवन के चित्रण में जितनी सफलता मिली है उतनी आज के साम्यवादी कवियों को भी नहीं मिली है। जनसाधारण की वस्तुओं को सफलतापूर्वक साहित्य पटल पर रखने में कुशल कवि जायसी को जनता का प्रतिनिधि कवि कहा जाय तो कोई अन्याय नहीं होगा।

— ० —

एक डोगरी कविता

फासला

★मूल तथा अनुवाद–जितेन्द्र उधमपुरी

प्रिये।
तुम और मैं—
काली अन्धेरी गुफा के
एक सिरे पर,
आमने-सामने
चिर परिचित
अपनी बे-बसी पर
रोते - हंसते
और घूरते
एक दूसरे को
बंधे हैं मर्यादा में
अजंता के दो बुतों से
जो न लांघ पाये
गज़ भर दूरी
युगों - युगों से।



मेरा गां/व शहर

★ अनिल चौरासिया

ओ मेरे गांव !
तुम कहां चले गये ?
अभी कुछ दिन पहले तक
यहां की मिट्टी - गंध में,
सुवासते थे !
टूटी - फूटी झोंपड़ी में,
खांसते थे !
लहलहाते खेतों में,
हरसते थे !
कीचड़ सने बच्चों में
हुलसते थे !
और अब तो
मिट्टी - गंध की जगह,
चिमनिओं से निकलता धुंआ
झोंपड़ी की जगह
दस मंजिला उठा हुआ कुंआ
खेतों की जगह
दानव सी मिलों का धुंआ
सभी कुछ नकली घुटा हुआ।

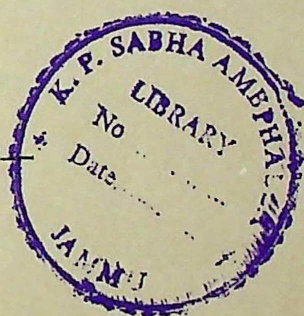
हां !
मैं समझ रहा हूं,
मेरे गांव !
तुम्हारा दर्जा बढ़ गया है,
अब तुम शहर हो गये हो !
पर तुम्हारे आदमी का दर्जा
दिन - ब - दिन क्यों घटता जा रहा है ?
वह आदमी से मशीन क्यों बनता जा रहा है ?
मशीन
भावनाहीन !
मेरे गांव –
तुम गांव ही बने रहते
तो क्या बिगड़ जाता ?
न करते
गांधी के स्वप्न को साकार
न सही,
पर स्वप्न - भंग क्यों कर दिया
मेरे गांव ।
जवाब दो मेरे गांव
जवाब दो ?



हर शाम
शहर से गांव की ओर

✦ जवाहर रैणा

हर सीधी सड़क के बाद
एक मोड़—
अनचाहा;
अन्तर को और अकुला देता है—
कोई बेशर्म चौराहा।
कंकड़ीली, कंटीली पगडंडी पे
लौटने को पैर बेचैन
पत्तों से झांकता सवेरा,
मेंहदी रची सांझ,
कजरारी रैन।



× × ×

आकाश के विस्तार को तोड़ देते हैं--
मिलों के भोंपू,
ऊंचे मीनार;
कंक्रीट के खंवे,
इस्पात के तार।
झूटे मेक - अप से परेशान
रंग भरे फूल,

हर कली के उरोजों पर
कितने घृणास्पद स्पर्शों की धूल ।

× × ×

हर शाम जब मैं
शहर से गांव की ओर चलता हूं,
पराग के हर कण से
लिपटता है—
कस्बाई शाम का
काला साया ।
हर सीधी सड़क के बाद
एक मोड़—
अनचाहा,
अन्तर को और अकुला देता है—
कोई बेशर्म चौराहा ।



यह शहर आपका

✱ सुतीक्षण कुमार 'आनन्दम'

(एक)

सोचता हूँ
तुरंत छोड़ दूं
दूर दूर तक फैला
यह शहर आपका ।

नगर है यह
आतिशबाज़ों का
जहां दिन - रात
हवाइयों की रौनक
फुलझड़ियों की धनक
का रहता है घर - घर मेला
इत्र में डाली जाती है
सुगन्ध बारूद की
धुएं से भरा रहता है
सारा आकाश
और—
धरती सोग मनाती है ।

(दो)

सोचता हूं
तुरंत छोड़ दूं
दूर दूर तक फैला
यह शहर आपका ।

यहां दोपहर
खूब कड़कती है
रोम रोम जलने लगता है
भुन जाती है
मेरे अंतस् में
रहती नन्ही - सी मीन;
क्योंकि
अन्तस् में (सम्भवतः)
पानी बहुत कम है
जो
शीघ्र ही खौलने लगता है
और
भाप बन कर
हवा हो जाता है ।

यहां रात
बहुत ठंडी है
ठिठुर जाते हैं
भीतर और बाहर दोनों,
दबोच जाती है
मासूम सारिका की गरदन,
चोंच
जम कर सिल जाती है
क्योंकि अब
उसके पंखों में
हिम सहने की शक्ति नहीं है ।

(तीन)

सोचता हूँ
तुरंत छोड़ दूं
दूर दूर तक फैला
यह शहर आपका ।

यहां पर
रात और प्रात
मदहोशी के बाने में
थिरक थिरक
विष के घूंट पिलाती हैं
अथवा
मर्मर कर
मृत्यु का गीत सुनाती हैं ।

एक धकेलती है
आग की लपटों में
और दूसरी
पहुँचाती है
जख - सी ठंडी घाटी में;
तत्पर रहती हैं दोनों
झपट लेने को
फाखता प्राण
एक बाज़ की भांति
पंख फैलातीं
वे दूर दूर तक
पीछा करती हैं
किंतु यहां
कोई शिवी नहीं है ।

(चार)

सोचता हूं
तुरंत छोड़ दूं

दूर - दूर तक फैला
यह शहर आपका ।

जाऊं वहां
जहां
अभी तक
पर्वत हैं
रेत और पत्थरों से लदी
ऊबड़ - खाबड़ धरती है ।

जहां अभी तक
आप के
गुलदानों का
पलास्टिक की लताओं का
या
इंजन की खचखच का
बना हुआ है अभाव !

काई से अन्य
कुछ नहीं उगा है जहां;
जीने को जहां
रींग रहे हों
आदि - जीव ही भले
बोलने को जोड़ रहे हों
अपने शब्द
या संकेत
वाच रहे हों
अपने मौलिक भाव ।
चलते होंगे वे
निस्संदेह
पिपीलिकाओं–से ।
कतारों में ढोहते होंगे
अपने अपने डिम्बों में

अर्ध वर्ष का राशन,
खाते
बचाते
खूब जीते होंगे ।

तुम्हारी गंध होगी
दुर्गन्ध उनके लिये ।

वे करती हैं
अपनी संगिनियों का
सदा उद्धार
जी कर भी
और मर कर भी
रखती हैं सब को
साथ साथ ।

यह किन्तु—
झोंकता है सदा
अपनी ही जात में ज्वार
जीते जी भी
और
मरने पर भी ।
उपेक्षा का व्यवहार
करता है –
शासन,
अपहरण और शोषण ।

(पांच)

सोचता हूं
तुरंत छोड़ दूं
दूर दूर तक फैला
यह शहर आपका ।

मिल जाऊं उनके साथ
दूं उनको अपना आप
और करूं
एक नव निर्माण
अथवा—
लूं उनका सिद्धान्त
उनके भाव
तथा पाऊं :
एक सत्य (नव निर्माण),
भले ही
जो होगा ।
एक दो या सौ नहीं
सहस्रों नहीं
लाखों, करोड़ों वर्ष पार
आपसे पिछड़ा
पर देखूंगा
निश्चय ही
प्रगति के पथ पर
वह आपसे भी आगे है ।

जानूंगा फिर--
एक एक कर नहीं
दल के दल आपके
होंगे आतुर
आने को वहां
किंतु—
तब—
लगा होगा
मुख्यद्वार पर यह सूचना पट :
प्रत्येक व्यक्ति
आमंत्रित नहीं



पद्मा के तट पर

★ शशि प्रभा वर्मा

रशीदा अपने इकलौते बेटे निज़ाम, जिसे वह प्यार से शेखु कहती, को गोद में लेकर पुचकार रही है तथा उसकी आंखों से आंसुओं की बहती हुई धारा स्पष्ट रूप से संकेत कर रही है कि रशीदा किसी बीते हुए कटु-अनुभव को एक बार फिर मन-ही-मन में झेल रही है। अचानक बाहर से उसके पति सलीम ने कैम्प में प्रवेश किया। इस कैंप का प्रबन्ध भारतीयों द्वारा बगला देश से आए हुए शरणार्थियों की सहायतार्थ किया गया था। सलीम ने रशीदा के कपोलों पर लुढ़कते हुए आंसुओं को देखा और बोला, "रशीदा तुम रोती क्यों हो? उन बीती हुई बातों को भुला क्यों नही देती?"

रशीदा जो अब तक मौन थी बोली :—

"उन बीती हुई बातों को मैं कैसे भुलाऊ? यह तो खुदा की महरबानी है कि हमारा बच्चा हमारे पास है, वरना न जाने क्या गजब हो जाता?"

'लेकिन अब तो हमारा शेखु हमारे पास है न, तुम्हें डर को अपने मन से निकाल देना चाहिए।"

सलीम ने समझाने के स्वर में कहा। रशीदा ने भर्राये तथा कांपते हुए स्वर में उत्तर दिया :—

"निकाल तो देना चाहिये किन्तु यह 'डर' मेरे मन से चाहने पर भी नहीं निकलता; मुझे लगता है कि ज़ालिम अब भी मुझ से मेरा शेखु छीन रहे हैं और फिर मेरे रौंगटे खड़े हो जाते हैं। मुझे ऐसा लगने लगता है जैसे मेरे दिल की धड़कन रुक जायेगी।"

सलीम ने अब तक धैर्य धारण कर रखा था परन्तु अब वह भी भावुक होता जा रहा था, उसके धैर्य का बांध टूट चला था। रह-रह कर उसकी आंखों के सामने उसके भाई की निर्दयतापूर्ण हत्या का दृश्य घूम जाता था। रशीदा की सुबकियों की आवाज उसे एक बार फिर यथार्थ परिवेश में खींच लाई और वह रशीदा को धैर्य बधाने के लिए सम्भल कर बोला :—

"यह सच है कि यदि हमें मुक्ति-वाहिनी के सिपाही उन अत्याचारियों के चगुल से न छुड़ाते तो हम पर खुदा जाने क्या गुजरती, लेकिन अब तो हम सुरक्षित हैं। और फिर जो घट नहीं सका उसको लेकर हम कब तक मन ही मन में डरते रहेंगे . . . . .।"

"अम्मां", सलीम के वाक्य को बीच में ही काटते हुए निज़ाम अपनी मां की गोद से बाहर निकलता हुआ अपनी तोतली वाणी में बोल उठा, "मैं थेलने जाऊंगा।"

रशीदा ने उसे प्यार से समझाते हुए बाहर जाने से रोका परन्तु शेखु का 'बालहठ' जाग उठा था अतः वह बार-बार बाहर जाने की ज़िद करने लगा था। शेखु की इस ज़िद के आगे झुकते हुए सलीम ने रशीदा से कहा :—

"रशीदा, अब तो शेखु को खेलने के लिए बाहर जाने से न रोको। अब तो हम सुरक्षित हैं और शेखु के लिए भी बाहर कोई ख़तरा नहीं है।" इतना कहते ही सलीम ने आंख के इशारे से शेखु को बाहर जाने की आज्ञा दे दी।

शेखु को खेलने गए अभी कुछ ही समय बीता था कि बाहर से उसके रोने और एक औरत के जोर-जोर से चिल्लाने और बड़बड़ाने का ऊंचा उठता हुआ स्वर सुनकर रशीदा और सलीम दोनों ही घबरा कर बाहर की ओर भागे। उन्होंने देखा कि एक औरत निज़ाम को गोद में उठाए पागलों की तरह बड़बड़ा रही थी "मेरे अनवर, तुम को वह ज़ालिम मुझ से छीन कर ले गए थे लेकिन मैं जानती थी तुम जरूर मुझसे मिलोगे, लेकिन . . ., लेकिन तुम मुझे अम्मी कह कर पुकारते क्यों नहीं . . . ?"

उसकी बात को बीच में ही काट कर रशीदा चिल्लाते हुए उस औरत पर झपट पड़ी और निज़ाम को उसकी पकड़ से छुड़ाने का यत्न करने लगी। वह निज़ाम को उससे छीन भी रही थी और बड़बड़ा भी रही थी :—

"कौन हो तुम ? मेरे शेखु को छोड़ती क्यों नहीं।"

इससे पहले कि वह औरत कोई उत्तर दे, रशीदा के कानों में एक मर्दाना आवाज आई जो कह रही थी :—

"यह पगली नहीं अपितु मेरी पत्नी नज़मा है, कभी-कभी यह छोटे बच्चों को देकर आत्मविस्मृत-भाव से ऐसी हरकतें करने लगती है।"

रशीदा ने चौंक कर पीछे देखा तो पाया कि एक चालीस साल की आयु का व्यक्ति जिसके बाल खिचड़ी थे और दाढ़ी काफी घनी थी खड़ा हुआ सलीम को बता रहा था — "मेरा नाम हमीद है, मैं साथ के ही मुहल्ले में रहता हूँ, उम्मीद है मेरी बीवी की इस हरकत का आप बुरा नहीं मनाएगे।"

"नहीं, नहीं ! इस में बुरा मानने की क्या बात है। लेकिन क्या मैं जान सकता हूँ कि इनकी ऐसी हालत क्यों हो जाती है।" एक आह भर कर हमीद ने उत्तर दिया, "यह एक दुःख भरी कहानी है, जिसने मेरी जिन्दगी को तो तोड़ा ही मेरी बीवी की जिन्दगी का तो रुख ही बदल दिया है।" फिर वह कुछ सम्भल कर बोला "छोड़िये इसे। आप क्या करेंगे यह सब जानकर।" परन्तु रशीदा और सलीम को लगा कि बात को जाने बिना उन्हें चैन नहीं मिल सकेगा इसीलिए जब उन्होंने बार-बार हमीद से उस औरत की विक्षिप्तता का कारण पूछा तो उसने कहा, "आज से चन्द महीने पहले की बात है हमारे मादरे-वतन बंगाल में जुल्म की आग भड़क कर जंगल की आग के समान फैलने लग गयी थी। पश्चिमी पाकिस्तान के तथाकथित हमारे भाई हम पर बेहद जुल्म ढा रहे थे। नहीं ढाए। बच्चों को उनकी माओं, भाईयों को बहनों तथा खाविंदों को उनकी ही बीवियों के सामने तरह-तरह की तकलीफें दी जातीं और फिर कत्ल कर दिया जाता। वहां कभी कभी वह इसका उलटा भी करने लग जाते थे। मर्दों के सामने उनकी औरतों को—जो उनकी मां, बहन या बेटी होती थीं — जलील-व-ख्वार किया जाता था। मर्द बेचारे खून के घूंट पी कर रह जाते और औरतें अपनी लुटी हुई अस्मत का मातम मनाती वहीं ढेर हो जातीं। इस बढ़ते हुए जुल्म से घबराकर सब लोग अपने-अपने घरों का मोह त्याग कर वहां से भाग खड़े हुए। भागते-भागते दरिया-ए-पद्मा के किनारे पहुँच कर जो हमने देखा वह हमारे दीन-ओ-ईमान को हिलाने के लिए काफी था। पद्मा में बहते पानी के स्थान पर गर्म इन्सानी खून का बहाव देख कर हमें ऐसा लगने लगा था कि हमारी रगों में बहता खून हमारे अंग-अंग को तोड़कर उस बहते हुए खून में मिल जाने के लिए मचल उठा है। और हमारे दिलों में उठती हुई इस आरज़ू की एक भनक शायद उन इन्सानी दरिन्दों के कानों तक पहुँच चुकी थी

क्योंकि अभी हम उस खून के दरिया को पार करने की तरकीबें सोच ही रहे थे कि उन की एक टुकड़ी आकर हमारे सरों पर सवार हो गई। उन्होंने हमें लूटना शुरू कर वहशत के जिस नंगे नाच को देखने की ताब न लाते हुए हम अपने घरों से भाग खड़े हुए थे वह अब यहां हमारी आंखों के सामने एक बार फिर शुरू हो चुका था। हमारे देखते ही देखते उन्होंने हमारे जिगर के टुकड़े अनवर को हमारे हाथों से छीन लिया और संगीनों की नोकों पर उछाल दिया। अनवर की चीख पद्मा के तट के किनारे-किनारे दूर-दूर तक बहते हुए खून के साथ बहती चली गई। अनवर की आंखों की मासूमियत में तड़पती इंसानियत की लाश हमारी आंखों के रास्ते हमारे दिमागों के कब्रिस्तान में हमेशा-हमेशा क लिए दफन हो गई। हमारे बन्धे हुए हाथ हमारा सीना तोड़ रहे थे और धीरे-धीरे हम अपने होश खो बैठे। हमने उस वक्त कितना चाहा था कि हम भी अनवर के साथ दरिन्दों की इस बस्ती से दूर उस खुदा की बस्ती में चले जाएं जहां कोई हमारे अनवर को हमसे जुदा न कर सके। पर अफसोस अल्लाह-ताला को हमारी यह ख्वाहिश मन्जूर न थी।"

इतना कहते कहते हमीद का गला रुंध गया था। आंखों से लगातार आंसूओं का बहाव फूट पड़ा था। दूर कहीं एक गौरेया के चीखने का स्वर आ रहा था और सब अपना अपना सांस रोके इस कहानी का अंजाम सुनने के लिए उतावले हुए जा रहे थे। हार कर सलीम ने हमीद से पूछा :—

"फिर ! फिर आगे क्या हुआ।"

"आगे", अपनी मानसिक यात्रा से लौटते हुए हमीद ने दोहराया, "आगे ! आगे वही हुआ जो नहीं होना चाहिए था। हमारा अनवर हमसे छिन गया और हम जीवन भर छोटे-छोटे बच्चों में उसे खोजने के लिए जिन्दा छोड़ दिए गए।"

'उन दरिन्दों को तुमे पर इतना रहम किस प्रकार आ गया कि उन्होंने तुम लोगों को जिन्दा छोड़ दिया ?"

"वह दरिन्दे हमें जिन्दा छोड़ देते यह एक नामुमकिन सी बात थी। हम तो 'मुक्ति-सेना' की मेहरबानियों के नतीजे में उन जालिमों के चगुल से छूट गए और एक नाव के सहारे पद्मा को पार करके उन्हीं की मदद से हम इस शरणार्थी शिविर में आ सकने में सफल हो सके।"

हमीद अपनी दर्दभरी कहानी सुनाने के बाद चुप होकर शून्य की ओर घूरने लग गया था। दुःख और भय के इन्द्रधनुषी भावों का रंग उसके चेहरे पर झलक आया था। पास खड़ी नजमा पहले तो अवाक् सी उसके चेहरे के भावों को पढ़ने का यत्न करती रही परन्तु फिर अचानक ही फूट-फूट कर रोने लग गयी। उसका

क्रन्दन रशीदा के कोमल हृदय को दहलाने लग गया था। उसकी अपनी हिम्मत टूट चुकी थी, फिर भी वह नज़मा को हिम्मत बंधाने का प्रयास कर रही थी और कह रही थी, "चुप हो जाओ बहन मत रोओ। तुम्हारे और मेरे बेटे में अब कोई अन्तर नहीं।" इतना कहते-कहते उसने शेखु को नजमा की गोद में डाल दिया। नज़मा के कुछ कहने से पहले ही वह कह उठी :—

"हैरान मत होओ। मेरा शेखु तुम्हारा अनवर है।" नज़मा का कठ रुंध गया था। वह सप्रयत्न बोली, "बहन, क्या तुम सच कह रही हो, मेरे अल्लाह, यह कोई ख्वाब तो नहीं। क्या सचमुच यह हक़ीकत ही है।"

"हाँ! हां!! यह हकीकत है। तुम्हारा अनवर तुम्हारी गोद में है औ. . ."

"लेकिन", रशीदा की बात काटकर हमीद बोल उठा, "यह हक़ीक़त होकर भी हक़ीकत नहीं हो सकती। नजमा को अनवर मिल सकता है, पर बंगाल की लाखों माएं अपने बच्चे, बीवियां अपने खाविन्द और बहनें अपने भाई कहां से लेंगी?"

और देर तक फ़िज़ा में हमीद का यह सवाल गूंजता रहा, इसकी गूंज बढ़ती ही जा रही थी। सब को लग रहा था कि उनके दिलों के अन्दर भी कोई हमीद बैठ कर यही सवाल बार बार दुहरा रहा है, दुहराए चला जा रहा है पर उनके दिमागों के पास इस सवाल का कोई जवाब नहीं है।



लोक-गीतों में राष्ट्रीय पक्षी—मयूर

★ श्रीमती विमला अग्रवाल

मयूर का भारतीय जीवन से पुरातन संबंध है। भित्ति-चित्रों, चूर्ण-चित्रों, रंगोली, प्रतीक-चित्रों, और गोदनों में भी इसे स्थान मिला है। यह हमारा पुराना पक्षी है। इसीलिये इसका उल्लेख वेदों में भी है। नृत्य-कला में भी मयूर-नृत्य विशिष्ट था। 'मयूररास' का उल्लेख सूर ने भी किया है। तीव्र-गति वाले 'मयूररास' में कन्हैया क्षिप्रता के कारण हर गोपी के पास दिखाई देते थे।

सावन में, आइये अवध के गांवों में। कहीं वंशी बज रही है। कहीं झूले की पेंगों के साथ स्वर भी उठ रहा है, 'आये सावन अधिक सुहावन, वन में बोलन लागे मोर।' बादल और मोर का सबंध मिथिला के मधुर कंठों ने भी दुहराया है, 'बादल बरिसे, नाचे मोर।' जैसे उत्सुकता से वे मेघ के, जल की बूंदियों के रूप में, धरती पर आने की बाट ही जोह रहे थे। सावन की मन-भावन ऋतु में कृष्ण की सुधि लोक-गीतों में समा उठती है। केका-रव के पृष्ठ-संगीत के साथ, कामिनियों की कूक में समाहित इन पंक्तियों के सौन्दर्य की कल्पना कीजिये :—

"आये सावन अधिक सुहावन,
वन में बोलन लागे मोर।
उमड़ घुमड़ कजरारे बदरवा
विहरत हैं चहुँ ओर।

आम की डाली कोइलिया बोले
करे पपिहरा शोर ।।
चपा, जूही, बेला, चमेली,
गमकत हैं चहुं ओर ।।
जमुना तट पर दादुर बोले
पीपल पवन झकोर ।।
वृन्दावन में केलि करत हैं
मोहन नन्दकिशोर ।।"

मैदानी भागों की तो यह दशा है पर राजस्थान के मरु में मोर की बोली सुनते ही प्रिया परदेस जाते प्रिय से अनुरोध करने लगती है, "प्रिय, जड़ पर्वत भी 'हरिया' गये हैं । वन में मोर कूकने लगे । ऐसी लुभावनी ऋतु में तो याचक, चाकर, और चोर ही घर छोड़ते हैं । सावन में ही गीत, और राग-रग की योजना होती है । इसमें तो घर से जाना उचित नहीं । घर आना होता है । अब तो घोड़े 'थान' पर बांध दें ।" यह है, मयूर की कूक का रंग जो मन में उमंग लाया है :—

"डूंगरिया हरिया हुआ,
वणे झिगोरिया मोर ।
इणि रुत तीन ई नीसरइ,
जाचक, चाकर, चोर ।।
सावण लागो सायबा
गाणा, माणा, रंग ।।
आणा घर, जाणा नहीं,
ठाँणां बांध तुरंग ।।"

किन्तु कुछ मन:स्थितियों में मोर का 'शोर' कानों को फोड़ता-सा लगता है । मैथिली महिलाओं को वह स्वर मदन के शर सा लगता है, "दादुर मोर मदन सर जोरे, उठत विरह तन गात जरी ।" सहा तो वह कुमायूंनी कामिनियों से भी नहीं जाता । पहाड़ों में प्रतिध्वनि और प्रबल होकर जो गूंजा करती है । एक "ऋतुरैणा" ऋतु-गीत की पक्तियां देखिये :—

"मोर के रव शोर अति घन
घोर सहलो ने जाय मो ।"

मन को उकसाता वह स्वर कानों को ही नहीं फोड़ता, हृदय को भी तोड़ता सा लगता है । नवोढ़ा लाज छोड़कर बाबा से "गौना" कर देने का अनुनय करने

लगती है। भोर से ही मोर जैसे ताना मारने लगते हैं। ये पापी प्राण तन को छोड़ कर निकल भी नहीं जाते। जाने कैसा मोह इन्हें इस शरीर से हो गया है। बाबा सांत्वना देते हैं—"बेटी चौमासा बीत जाने दे। अगहन आते ही तुझे विदा कर दूंगा।"

"हरि हरि बाबा के सगरवा
मोरवा बोले रे हरी।
मोरवा क बोलिया सुन के
बिहरै मोरी छतिया रामा,
अरे बाबा देइ काहे न देत्या
हमारो गवनवां रे हरी।
बीतय दा चौमासा बेटी
आवय दा अगहनवां रामा,
अरे बेटी देइ देवै अबकी
हम गवनवां रे हरी।।"

राजस्थानी विरहिणी तो केका-रव से अत्यधिक क्षुब्ध है। दिन तो दिन, आधी रात, ढलती रात, जब चाहा "पीकू-पीकू" की रट लगा बैठे। हिये में हूल उठने लगती है। इच्छा होती है 'सिर के फूल' सहित शीश काट कर फेंक दूं—

सिर काटूं रे मोरिया,
काटूं सिर को फूल।
ढलती रातां गहकियो,
हियड़ो पड़ी जो हुल।।"

अवध की विरहिणी तो मोर की अपेक्षा प्रिय को ही दोष देती है। यदि वह 'बेदर्दी' न होता, तो ऐसी दशा ही क्यों होती ? उसके होते मोरों को इतना साहस होता कि वे पंख फैला कर अपने वैभव का प्रदर्शन करें ? पाजी पपीहा 'पिहुंक' कर साथ-साथ स्वर मिलाने का दुस्साहस करता ?

"कइसे वेदरदी से नेहिया लगाये रसिया।
मोरवा पखना पसार,
दिखलावेला बहार,
पापी पपिहा पिहुँक तरसावे रसिया।।
मुरझावे गजरा, थकि गइले नजरा,

कबौं पतिया तलक ना पठावे रसिया ।।"

'मेघदूत' में वलय की झंकार पर मोरों को नचाने का वर्णन है । मालवा के गीत भी जन-जीवन में उसके अभिन्न सगी होने का उल्लेख करते हैं । यहां की माटी में बच्चे मिट्टी के मयूरों से ही नहीं, सजीव मोरों से भी मन बहलाते हैं । वे मयूर घर के पालित हैं । भारत की एक पुरातन परम्परा की थाती लोक-गीतों में अक्षत है :—

'छज्जा ऊपर मोर नाचैं,
खेलैं कुंवर दोय !"

संस्कृत में अनेक पक्षियों को दूत रूप में भी प्रस्तुत किया गया है । भोजपुरी गीतों की विरहिणी नायिका पालित मयूर को ही अपना सदेश-वाहक बनाती है । नित्य के सम्पर्क में रहने के कारण उससे अधिक 'हितू', और सह-अनुभवी और कौन होगा ? किसी बाहरी व्यक्ति से वह मन की 'बिथा' कह भी कैसे सकेगी ? प्रिय पूरब में 'बानिज' के लिये गये । विदेश क्या गये, देश की 'लक्ष्मी' की सुधि भी भूल गये । मन बहलाने को एक मयूर दे गये । वह मोर से अनुरोध करती है, तू उड़ते हुए कलकत्ते जा और स्वामी से मेरी दशा का वर्णन कर, उन्हें ले आ ।

"पिया मोर गइले रामा,
पूरबी बनिजिया,
कि देके गइलैं ना एक
मोरवा खिलौना ।
कि देके गइलें ना ।।
उड़ल उड़ल मोरवा गइले कलकतवा
कि जाइ के बइठे ना मोरे
सामी जी के अगवां,
कि जाई के बइठे ना ।।
मोर के पकरि सामी
गोदिया बिठवलें
कि कहु मोरा ना,
मोरे घर क कुसलिया,
कि कहु मोरा ना ।।"

मयूर गृह की स्थिति के परिप्रेक्ष्य में उस विरहिणी की दशा का वर्णन करता है । माता, बहिन सभी बुरी दशा में हैं । अन्त में द्रवीभूत पति घर की ओर चल

पड़ता है। विरहिणी 'अटारी' पर चढ़ कर झांकती है। देखती है, आगे-आगे उसका प्रिय पालित मोर और पीछे उसका प्रियतम, दोनों ही आ रहे हैं। दूत हो तो ऐसा :-

कोठवा ऊपर चढ़ि
झांके बारी धनियां,
कि आइ गइले ना
अलगरजी मोर बलमवां,
कि आइ गइले ना ।।
आगे आगे मोरवा
पीछे पीछे पियवा,
से लेइके आवे ना
तीन फँकिया झुलनियां,
से लेके आवे ना ।।"

मोर घर का सारा हाल कह कर 'अलगरजी' बालम को भी पकड़ लाते हैं। किन्तु कभी-कभी उनकी जबान भी बन्द हो जाती है। वे नायिका के पर-पुरुष-प्रेम के साक्षी हैं। किन्तु घर का यह भेद खोल कर, चोर को कैसे पकड़ायें ? चोर भी तो घर का ही है। वह भी पति का छोटा भाई । घर की बदनामी वह कैसे होने दे ?

"ओटला पे ओटला रे
जिसमें बैठे मोर ।
मोर बिचारो कइ करे रे
घर को देवर चोर ।।" (मालवी गीत)

कुछ भी हो, क्रीड़ा का साथी, प्रेम-दूत, पति को लाने वाला मोर अपने रूप, तथा अपनी वाणी से युवतियों को लुभाता ही रहा है। वे अपनी चुनरी मोर के ही रंग में रंगाना चाहती हैं। झुलनी पर भी मोर - पंखी 'छाप' हो । मयूर तो कान्हा का शृंगार है। फिर तरुणियों का मन कैसे न मोहे ? इसीलिये तो वे मोर-पख मंगा कर अपने को सजाना चाहती हैं। "हे प्रिय। न हो, यमुना के पार नाचते मयूर के ही दर्शन करा दो। मयूर के बिना मेरी बगिया सूनी है। प्रिय, मैं आंचल फैला कर याचना करती हूँ, मुझे मयूर-मयूरी का जोड़ा ला ।" एक पक्षी के प्रति इतनी उत्कट आसक्ति किसी भी देश के साहित्य में दुर्लभ है :—

'हम्मैं मोर रंग चुनरी रंगा दे बलमू ।।
झुलनी हरियर मंगावा,
मोर पखी छपवावा,
गोटा बिजली क़ अरियां लगा द बलमू ।।
मोर कान्हा क सिंगार,
लागे राधा के पियार,
हम्में मोरवा क पंखिया मंगा द बलमू ।।
मोरवा होत भिनुसार,
नाचे जमुना क पार,
हम्मे मोरवा के नचिया देखा द बलमू ।।
सून बगिया हमार,
मांगी अंचरा पसार,
एगो मोर एगो मोरनी मंगा द बलमू ।।"

मयूर के बिना उनकी बगिया, उनका उपवन सूना है, तो मोरपंख वाले के अभाव में मन सूना । इसी लगाव के कारण वे पिछवाड़े के दर्जी भाई से झुलनी पर दो मोर बनाने का आग्रह करती हैं । "बड़े कारीगर हो, दर्जी भाई । तुम्हारी कला का, तुम्हारी सूई का, लोहा तब मानूं, जब ऐसे सूई चलाओ कि झुलनी पर दो मोर बन जायें । साथ में, साथ देने के लिये चार और पक्षी हों दर्जी भाई पूछता है, "बोल, कहां मोर, कहां दूसरी चिड़ियां बना दूं ?" गोरी बोली, "बाहों पर चारों चिरइयां हों । पर मोर तो अंचरा पर ही हो ।" यह उसके प्रिय का प्रतीक है । स्नेह का संकेत है । दर्जी चिरइयों के तो पांच रुपये, किन्तु केवल दो मोरों के बीस रुपये मांगता है । गोरी हुमक कर, तपाक से जवाब देती है, "तूं मोर बना । मैं बीस रुपये क्या तुझे लाख रुपये दूंगी । पर हां, मोर नाचता हुआ होना चाहिये ।"

"मोरे पिछवरवां दरजिया के दुकनियां,
नवरंग झुलनी सियइबे जी ।
अस कइ सुइया चलाओ दरजी भाई,
चार चिरइया दुइ मोर जी ।
कहवां बनावों गोरी चारो चिरइया,
कहवां बनावौं दुई मोर जी ।
पांच टका लेबों चिरइ क गोरी,
बीस टका दुइ मोर जी ।
लाख टका तोके देबों ए दरजी,
नाचत बनायो तूं मोर जी ।।"

उनकी दृष्टि में मयूर की जोड़ी आदर्श है। फुसलाने वाले के प्रति उनका स्पष्ट उत्तर है :—

"हंस मोर की जोड़िया छोड़ि के,
काक संग ना जाव ।।"

यह भारतीय जीवन का आदर्श है। इसीलिये तो वर्षा में मस्त कूकने वाला यह पक्षी राष्ट्रीय-पक्षी माना गया है। लोक-जीवन के अति निकट रहने के कारण, यह जन-जीवन के प्रतिबिम्ब रूप, लोक-गीतों में भी समाया हुआ है।



डोगरी लोक-गीत

घिरी घटा घनघोर ठण्डियां बून्दा पेइयां !
आए नेईं चितचोर ठण्डियां बून्दा पेइयां !!
बाग बगीचें बुलबुल बोलै
धारें सुन्दर मोर ।
गासा गीत पपीहा गांदा
जाड़ें मस्त चकोर ।।
घिरी घटा घनघोर ठण्डियां बून्दा पेइयां !
आए नेईं चितचोर ठण्डियां बून्दा पेइयां !!
चार-चफेरै बिजली कड़कं
पंन्छी पान्दे शोर ।
साधें होश नि बिन्द घरें दी
राखियाँ करदे चोर ।।
घिरी घटा घनघोर ठण्डियां बून्दा पेइयां !
आए नेईं चितचोर ठण्डियां बून्दा पेइयां !!



एक कश्मीरी लोक-कथा

शवरंग

★ डॉ० शिबन कृष्ण रैणा

एक समय की बात है कि कश्मीर के एक राजा शिकार खेलते-खेलते बहुत दूर निकल गये। इधर-उधर नज़र दौड़ाई तो एक सुन्दरी को उद्यान में फूल चुनते देखा। पहली ही नज़र में राजा उस सुन्दरी पर मुग्ध हो गए। वे घोड़े से उतर कर उस रूपसी के निकट आ गये और बातों-बातों में विवाह का प्रस्ताव रखा। राजा की बात सुन सुन्दरी ने उत्तर दिया—'मैं इस शर्त पर आपके साथ विवाह करने के लिये तैयार हूँ कि आप अपनी पुत्री की शादी मेरे पुत्र के साथ कर दें' इस विचित्र शर्त को सुनकर राजा के आश्चर्य की कोई सीमा न रही। उन्होंने सुन्दरी से पूछा—'भला ऐसा कहीं हो सकता है।' 'समय पड़ने पर सब कुछ हो सकता है, राजन्'—सुन्दरी ने सरल-भाव से उत्तर दिया।

राजा अपने नगर लौट आये। सुन्दरी की वह रहस्यपूर्ण बात उन्हें बार-बार याद आने लगी। वे इस बात पर विचार करते हुए घंटों समय बिताने लगे। मन्त्रीगण राजा की गंभीर मुद्रा देख चिन्तित हो उठे। उन्होंने मिलकर राजा को उनकी मुश्किल आसान करने का आश्वासन दिया। इस पर राजा ने सारी घटना कह सुनायी। थोड़े ही दिनों में गुप्तचर यह समाचार लेकर उपस्थित हुये कि वह सुन्दरी एक राजकुमारी है और हर रोज़ उस उद्यान में फूल चुनने जाती है। राज-

कुमारी के पिता के साथ सम्पर्क स्थापित किया गया और उन्हें अपनी पुत्री का विवाह राजा के साथ करने के लिये तैयार कर लिया गया। विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। तत्कालीन प्रथा के अनुसार राजा सात दिन तक अपनी ससुराल में रहे और फिर अपने देश लौट आये। स्वदेश लौटने के बाद उन्होंने न तो पत्नी को ही बुलाया और न कोई सन्देश ही भेजा। इसी बीच राजकुमारी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम शबरंग रखा गया। पिता अपने इस पुत्र को देखने तक न आया।

कई वर्ष बीत चले। शबरंग को उसके नाना ने सभी प्रकार की विद्यायें सिखाईं। किन्तु मां उसे एक सिद्धहस्त चोर बनाना चाहती थी ताकि वह अपने पति की निष्ठुरता का बदला ले सके। शबरंग को चोरों के एक उस्ताद के पास भेज दिया गया कुछ ही महीनों में शबरग चौर्यकला में पूर्णतया पारंगत हो गया। मां ने शबरंग की परीक्षा लेनी चाही —'बेटा, वह सामने वृक्ष है न, उसकी ऊपरी शाख पर चील का एक घोंसला है। उसमें कुछ अण्डे हैं, जाकर उन्हें उड़ा तो लाओ। याद रखना चील के कानों में भ नक तक न पड़े।' शबरंग ने ऐसा ही कर दिखाया। मां को विश्वास हो गया कि अब उसका बेटा चौर्यकला में माहिर हो गया है।

एक दिन शबरंग अपने मित्रों के साथ बाग में खेल रहा था। किसी ने उस से पूछा—'शबरग, तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?' शबरग सकपकाया, उसके पास इस सवाल का कोई जवाब न था। वह तुरन्त मां के पास आया और मित्र द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर मांगा। मां भी बरसों से इसी इन्तज़ार में थी कि कब उसका पुत्र उससे ऐसा प्रश्न पूछे और वह कहे — बेटा, तुम कश्मीर के राजा के पुत्र हो। विवाह के कुछ दिनों बाद ही उन्होंने मेरा परित्याग किया था। वे मुझे पूरी तरह से भूल गए हैं।' शबरंग ने अपनी मां की आंखों से आंसू उमड़ते देख तनिक क्रोध में आकर कहा—'मां, तुम ने यह बात मुझ से पहले क्यों नहीं कही। आशीर्वाद दो मां, मैं और नानाजी मिलकर कश्मीर पर चढ़ाई कर देंगे और वहां के राजा को बन्दी बना कर तुम्हारे सम्मुख प्रस्तुत करेंगे।' मां ने शबरग की पीठ थपथपायी और कहा– 'बेटा चढ़ाई करने से हमारा मतलब पूरा न होगा। मैं चाहती हूँ कि तुम कश्मीर जाकर अपनी योग्यता से राजा का दिल जीत लो। वे तुम्हारी कार्य-कुशलता पर प्रसन्न होकर राजकुमारी का विवाह तुम से करने को तैयार हो जायें, ऐसा कुछ करो। जब बात यहां तक पहुँच जाय तो मुझे सूचित कर देना।' 'ऐसा ही होगा मां' कहकर शबरंग ने मां से विदा ली और कश्मीर प्रदेश की ओर चल पड़ा।

कश्मीर पहुँच कर शबरंग ने सबसे पहले राजा के द्वारपाल से दोस्ती गांठ ली और बाद में वहां के राजमहल में एक छोटी मोटी नौकरी कर ली। देखते-ही-देखते

शबरंग अपनी व्यवहार-कुशलता से राजा का प्रिय-पात्र बन गया। एक दिन शबरंग ने सोचा कि जिस चौर्यकला को उसने इतनी लगन और मेहनत के साथ सीखा है उस का वह यहां पर उपयोग क्यों न करे ? बात उसको जंच गई। अब वह रोज रात महल से निकलता और शहर में चोरी करके रातों-रात पुनः महल में लौट आता। चोरी की वारदातें बढ़ने लगीं। चोर इतनी सफाई के साथ चोरी कर जाता कि राजा के सन्तरी, कोतवाल आदि सभी चक्कर खा जाते। शहर का सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। जनता ने राजा से फरियाद की—'महाराज ! हमारी रक्षा कीजिये। हम लोग लुटते जा रहे हैं।' राजा ने कोतवाल को डांटते हुए कहा—'अब की बार चोर पकड़ा न गया तो अपनी नौकरी जाती समझिये।' कोतवाल अपने संग कुछ सिपाहियों को लेकर चोर को पकड़ने के लिए चल पड़ा। उसने शहर के चप्पे-चप्पे पर कड़ा पहरा बिठा दिया किन्तु चोर का कहीं पता न था। एक रात कोतवाल पहरा देते-देते नदी की तरफ निकला। पानी में उसे एक स्त्री की परछाईं तिरती दिखाई पड़ी। उन्होंने दौड़कर स्त्री का हाथ पकड़ लिया। स्त्री चिल्लाई—छोड़ो मेरा हाथ, मैं एक मालिन हूँ और यहां पानी भरने आई हूँ।' कोतवाल ने कहा—'क्यों री, तुमने यहां से किसी चोर को भागते हुए तो नहीं देखा।' 'हां-हां अभी-अभी कोई आदमी यहां से पानी पी कर चला गया। आप यहां ठहरिये, वह जरूर आयेगा।' मालिन ने हाथ छुड़ाते हुये उत्तर दिया। 'मगर वह आपकी वर्दी देखकर भाग जायेगा आप यों कीजिये कि अपने वस्त्र मुझे दे दीजिये और मेरे आप पहन लीजिए। चोर आता ही होगा, आप यहीं बैठकर उसको लपक लीजिए'—कोतवाल को मालिन की यह बात जंच गई। उन्होंने मालिन के कपड़े पहन लिये और मालिन कोतवाल के कपड़े पहनकर वहां से चल दी। दूसरे सिपाही जब गश्त लगाते-लगाते नदी के पास पहुँचे तो अपने कोतवाल को मालिन के भेस में पाकर अपनी हंसी रोक न पाये—'कोतवाल साहब, चोर ने तो आपको अच्छा बेवकूफ बनाया है, वह मालिन नहीं बल्कि खुद चोर था।' राजा के कानों में जब यह बात पड़ी कि चोर ने कोतवाल को खूब उल्लू बनाया है तो वे आग-बबूला हो उठे। इस पर महामन्त्री ने आगे बढ़कर निवेदन किया कि 'महाराज, आज्ञा हो तो मैं चोर को पकड़कर आपके सामने उपस्थित कर दूं।' राजा ने महामन्त्री की बात मान ली।

महामन्त्री घोड़े पर सवार होकर चोर की तलाश में निकल पड़े। रात पड़ गई किन्तु चोर का कहीं पता न था। गश्त मारते-मारते महामन्त्री जी एक कुटिया के समीप पहुँचे। क्या देखते हैं कि एक दरिद्र बुढ़िया गेहूँ पीस रही है। मन्त्री जी को सामने खड़ा देख बुढ़िया रो पड़ी—'हाय-हाय, इस राज्य का अजीब हाल है। गरीबों की रक्षा करने वाला तो अब कोई नहीं रहा। देखते नहीं, उस नामी चोर ने अभी-अभी मेरी पीठ पर अनेक कोड़े लगाये और भाग गया—।' महामन्त्री ने

बुढ़िया को ढारस बन्धाया और पूछने लगा—'सुनो, वह चोर किस तरफ गया है'। 'उन पहाड़ियों की ओर'– बुढ़िया ने आंसू पोंछते हुए कहा । महामन्त्री पहाड़ियों की ओर गया किन्तु वहां चोर को न पाकर लौट आया। 'वहां तो कोई भी नहीं है'–– महामन्त्री ने बुढ़िया से कहा 'वाह, ऐसे भी क्या कोई चोर पकड़ में आ सकता है । आपको देखकर वह भाग न जायगा।'—बुढ़िया ने कुछ गंभीर होकर कहा ।' तो फिर क्या किया जाय'? महामन्त्री जी बोले। बुढ़िया दो–एक क्षणों के लिये सोच में डूब गई, फिर सहसा बोल उठी—'आप ऐसा कीजिये कि इस कुटिया में बैठकर मेरे वस्त्र पहन लीजिये तथा गेहूँ पीसते रहिये। मैं यहीं वृक्षों की ओट में छिपी रहूँगी । जैसे ही चोर इस रास्ते से गुज़रेगा तो मैं आपको आवाज़ दूंगी, आप उसे तुरन्त पकड़ लेना।' महामन्त्री को बुढ़िया की बात ठीक लगी । दो-एक दिनों तक जब महामन्त्री महल में नहीं आये तो राजा को चिंता हुई । वे स्वयं महामन्त्री तथा चोर की तलाश में निकल पड़े । उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने अपने महामन्त्री को फटे-पुराने चीथड़े पहने चक्की में गेहूँ पीसते देखा। राजा समझ गये कि इस बार फिर चोर चक्कर दे गया है ।

बहुत यत्न करने पर भी जब चोर पकड़ में नहीं आ सका तो परेशान होकर राजा ने घोषणा की––'हम चोर की निपुणता को देखकर प्रसन्न हुये हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि चोर खुद सामने आकर अपने आप को हमारे हवाले करता है तो हम अपनी राजकुमारी का विवाह उसी से कर देंगे तथा अपना आधा राज्य भी उसे सौंप देंगे। राजा की प्रतिज्ञा सुनकर शबरंग राजदरबार में उपस्थित हुआ और राजा से कहने लगा—जिस चोर की आपको तलाश है, वह मैं ही हूँ ।' पहले तो राजा को विश्वास नहीं हुआ किन्तु जब शबरंग ने चोरी का सारा माल सामने लाकर रख दिया तो राजा को पूरा विश्वास हो गया कि यही वह नामी चोर है।

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार राजा नें शबरंग का विवाह राजकुमारी के साथ करना चाहा किन्तु शबरंग ने राजा से निवेदन किया—'मेरी एक मां है जो यहां से बहुत दूर रहती है। आप आज्ञा दें तो मैं उन्हें यहां ले आऊ' राजा ने शबरंग की बात मान ली। जब शबरंग अपनी मां को लेकर राजमहल में आया तो राजा ने दोनों का समुचित आदर-सत्कार किया। तभी शबरंग की मां ने राजा से कहा—'यह शादी नहीं हो सकती, क्या भाई-बहन आपस में शादी कर सकते हैं?' राजा की समझ में कुछ नहीं आया। शबरंग की मां ने उन्हें सारी घटना सुना दी। राजा बहुत लज्जित हुये। उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ। उन्होंने तुरन्त शबरंग की मां को अपनी रानी स्वीकार कर लिया तथा अपने पुत्र शबरंग को राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।



Convener
Ramcharit Manas Chatuh Shati
Srinagar
Convener
Ramcharit Manas Chatuh Shati
Srinagar
Convener
Ramcharit Manas Chatuh Shati
Srinagar



Published by the Secretary, J & K Academy of Art Culture & Languages Canal Road, Jammu and Printed at S. N. Mangotra Printing Press Jammu